जिनभाषित

नवम्बर 2001

कुण्डलपुर-बड़े बाबा के निर्माणाधीन मन्दिर का स्वरूप

जैनधर्म और हवन
धर्म का भावकाण्ड नदारद

वीर निर्वाण सं. 2528 कार्त्तिक, वि.सं. 2058

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

जिनभाषित

नवम्बर 2001

मासिक

वर्ष 1 अङ्क 6

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय
137, आराधना नगर,
भोपाल-462003 म.प्र.
फोन 0755-776666

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द लुहाड़िया
पं. रतनलाल बैनाडा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश राणा, जयपुर

द्रव्य-औदार्य
श्री अशोक पाटनी
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-351428,352278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

		पृष्ठ
◆ आपके पत्र, धन्यवाद		1
◆ सम्पादकीय : धर्म का भावकाण्ड नदारद		5
◆ लेख		
● दीपावली	: पं. सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर	9
● वनवासी और चैत्यवासी	: पं. नाथूराम जी प्रेमी	10
● जैन धर्म और हवन	: पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया	12
● जैन संस्कृति और साहित्य के विकास में कर्नाटक का योगदान	: प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन	15
● जैसा नाम वैसा काम है मुनि श्री सुधासागर का	: डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन भारती	17
● आँखें नहीं, आँसू पोंछो	: श्रीमती सुशीला पाटनी	18
● खुलकर प्रेम करने की छूट	: डॉ. अशोक सहजानन्द	19
◆ शंका समाधान	: पं. रतनलाल बैनाड़ा	20
◆ व्यंग्य	: शिखरचन्द्र जैन	22
◆ नारी लोक		
● कर्नाटक की कुछ ऐतिहासिक श्राविकाएँ	: प्रो. (डॉ.) विद्यावती जैन	24
● गृहिणी और सच्चा साथी रसोईघर	: कु. समता जैन	27
◆ संस्मरण : सच्ची दीपावली	: ब्र. त्रिलोक जैन	28
◆ कविताएँ		
● मैं न आदमी रख पाया न कुत्ता	: प्रो. (डॉ.) सरोज कुमार	8
● दीवाली	: मुनि श्री चन्द्रसागर	9
● महावीर निर्वाण महोत्सव	: अनूपचन्द न्यायतीर्थ	11
● भूले-बिसरे अपने को	: ऋषभ समैया 'जलज'	21
● दो कविताएँ	: डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'	21
● बहुत उथली हो रही हैं	: अशोक शर्मा	26
● मानस दर्पण में	: आचार्य श्री विद्यासागर	आवरण 3
◆ समाचार		29-32

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र, धन्यवाद : सुझाव शिरोधार्य

Received ``Jina Bhashita'' Sept issue. I just had a bird's view. The format and get up is pleasing, the editorial is thought provoking. It analyses the mentality of pseudo religious persons of present day. Well written. The replies of Pt. Ratan lal Bainada to searching questions are excellant expositions of the spirit of agamas. Generally the issue is a collection of good write ups.

Br. Adinath
Shri Visakha Aacharya
Tapo-Nilayam, Kund-Kund Nagar,
Tamilnadu-604505

सितम्बर 2001 के सम्पादकीय में आपने एक अब तक के अछूते विषय को शक्तिशाली व विश्लेषणात्मक शैली में उठाया है। विधान-पूजा, भजन-आरती और पंचकल्याणक आदि उत्सवों में होने वाली फिल्मी-अनैतिक घुसपैठ मनोरंजन के नाम पर नहीं होने देना चाहिए। इस विकृति पर आचार्यों, गणिनियों, प्रतिष्ठाचार्यों और शीर्ष जैन नेतृत्व को तत्काल रोक लगानी चाहिए। पूजा के पुराने छंदों की लय यदि मनोरंजक नहीं है, तो छंद नहीं, लय बदली जा सकती है शास्त्रीय या उपशास्त्रीय लय पुराने छंद को मनोरंजक/सामयिक बना सकती है।

संगीतकार रवीन्द्र जैन से प्रेरणा लेकर मौलिक धुनों व सीधे-सच्चे बोलों पर गीत-संगीत की रचना कर आडियो कैसेट तैयार किये जा सकते हैं। 'मास' के लिये 'क्लास' की बलि न चढ़ाई जाये, बल्कि 'क्लास' में ही संगीत परम्परा-सम्मत उपयुक्त परिवर्तन कर 'मास' के लिये भी तैयार किया जाये व यूँ करके 'मास' (आमजन) के 'टेस्ट' को भी 'अपग्रेड' किया जाये। अपनी गीत-संगीत-भाषा, संस्कृति, कला आदि को 'अन्य' से प्रेरणा लेकर समृद्ध करना बुरा नहीं, बशर्ते शास्त्रीयता का ध्यान रखा जाए, परम्परा का निर्वाह किया जाये।

संजय सम्यक्
एम-213, शिवनगर, दमोह नाका, जबलपुर

'जिनभाषित' का सितम्बर अंक हस्तगत हुआ। मुखपृष्ठ पर श्री आचार्य श्री वीरसागर जी का चित्र देखकर मन श्रद्धा और आदर से भर उठा। 'सम्पादकीय' में तो आपने बस जो सही स्थिति है आज धर्म स्थल की, उसी का सही चित्रण खींचा है। यह प्रेरक और अपनाये जाने योग्य है, पर लोग इससे कुछ सीखें, तब न। दुग्धसेवन पर जो आज अनाप-शनाप लिखा जा रहा है, स्वीटी और ऋतु जैन ने इसका सही और वैज्ञानिक जवाब दिया है, बधाई हो दोनों को, इस तरह के लेख के लिये। कर्नाटक की जैन संस्कृति पर प्रो. राजाराम जैन साहब का लेख तो उच्चकोटि का शोधपत्र है।

श्रीमती विद्यावती जैन का लेख भी उच्च कोटि का है। श्री शिखरचन्द्र जैन ने अपने व्यंग्य से वर्तमान हालात पर सीधी चोट पहुँचायी है। कहाँ तक लिखूँ, सबकुछ तो अच्छा ही है। आप इस पत्रिका की गरिमा को बनाये रखेंगे, यह विश्वास है। यह पत्रिका बत्तीस पृष्ठों की होकर भी 320 पृष्ठों की ऐसी-वैसी पत्रिका से बहुत ज्यादा श्रेष्ठ और उपयोगी है।

विनोद कुमार तिवारी
रीडर व अध्यक्ष, इतिहास विभाग
यू.आर. कालेज, रोसड़ा,
(समस्तीपुर), बिहार

सितम्बर 2001 'जिनभाषित' का अंक देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके पूर्व जुलाई 2001 अंक बड़ागांव, शास्त्री परिषद् अधिवेशन में देखने को मिला था। आज जैन समाज की 300-400 के लगभग पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं, उनमें से कतिपय अपनी विशिष्टता के लिये जानी-पहचानी जाती हैं, उसी श्रेणी में जिनभाषित भी आती है।

आपका सम्पादकीय समयानुकूल वेदनायुक्त है। वैराग्य जगाने के अवसरों के फिल्मी-फूहड़ मनोरंजनीकरण के कारण ही आज हमारा युवा वर्ग भटक रहा है। आज विधान हो या पंचकल्याणक, जिसमें फिल्मी फूहड़ गीतों की ध्वनि पर कोई कार्यक्रम न हुआ, तो जानिये उसे लोग 'असफल' घोषित कर देते हैं। उसी फिल्मी तर्ज पर गाये गये गीत पर धार्मिक आयोजनों में जिस प्रकार नृत्य आदि देखने को मिलते हैं, वे शालीनता की सीमा-रेखा को भी कभी-कभी पार कर जाते हैं, खैर.....। कब चेतेगा हमारा समाज? श्रमण ज्ञान भारती, मथुरा की स्थापना जैन विद्याध्ययन के लिये स्तुत्य कदम है। 'भवाभिनन्दी मुनि और मुनि निन्दा' पठनीय चिंतनीय है। मैं पूर्णतः समर्थक हूँ इस लेख का। आदरणीय बैनाड़ाजी का शंका समाधान स्तंभ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इससे अच्छा लाभ होगा। देवस्तुति का ब्र. महेश जी, सतना (वर्तमान में सांगानेर) का हिन्दी अनुवाद सभी के लिये पठनीय है।

आपके सम्पादकत्व में पत्रिका ने शीघ्र ही सफलता अर्जित की है। कवर पृष्ठ चुम्बकीय आकर्षण युक्त है। कागज का प्रयोग, छपाई सुन्दर है, जो आज कम देखने को मिलती है।

सुनील जैन 'संचय' शास्त्री
बी-3/80, भदैनी,
वाराणसी (उ.प्र.) -221001

'जिनभाषित' के सभी अंक प्राप्त हुए हैं, एतदर्थ धन्यवाद।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखते हुए प्रसन्नता है कि अंकों में चयनित प्रायः सभी लेख धर्म हित में समाज में जागृति हेतु होने से प्रशंसनीय हैं। आप द्वारा लिखित सम्पादकीय समाज में व्याप्त धर्म के नाम पर होने वाली विकृतियों के परिमार्जन हेतु ध्यान देने योग्य हैं। जिज्ञासाओं का समाधान भी अत्यंत आवश्यक होने से अभिनंदनीय है। परम पूज्य आचार्यों एवं मुनि वृन्दों के लेख ज्ञानवर्धक और मार्गदर्शक हैं। सभी दृष्टियों से पत्रिका का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। यह समाज का मार्गदर्शक, आदर्श पत्र बने, इसी शुभकामना के साथ।

नाथूराम डोंगरीय जैन
549, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)

'जिनभाषित' के अंक मिल रहे हैं। आपकी विद्वत्तापूर्ण प्रतिभा से सम्पादित इस पत्रिका ने अल्प समय में ही पत्रजगत् में शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया है, जो हर्षद आश्चर्य का विषय है।

अरुण कुमार शास्त्री
सेठजी की नसियाँ,
ब्यावर (राज.) -305901

नवोदित मासिक पत्रिका 'जिनभाषित' के दो अंक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिनमें महत्त्वपूर्ण जैनतत्त्व ज्ञान को सुबोध शैली में उद्घाटित किया गया है। 'शंका-समाधान' जो स्थायी स्तम्भ है इससे शास्त्रों का अवलोकन करने वाले स्वाध्यायार्थियों को अत्याधिक लाभ होगा। जैसा कि पत्रिका का नाम 'जिनभाषित' है, इससे जिनवाणी का रहस्य उद्घाटित होगा। 'शोध सम्भावनाओं से भरा जैन साहित्य'- डॉ. कपूरचन्द्र जैन का लेख पठनीय है। इसी प्रकार ''जैन संस्कृति एवं साहित्य का मुकुट मणि कर्नाटक और उसकी कुछ श्राविकाएँ'' ज्ञान-वर्धक सामग्री प्रस्तुत करता है।

विश्वास है, उक्त पत्रिका भविष्य में जैन धर्म और साहित्य की सेवा करने वाली पत्रिकाओं में अग्रणी होगी। सम्पादन, प्रकाशन एवं साज-सज्जा आकर्षक है। पत्रिका के द्वारा जैन साहित्य और समाज का महान उपकार होगा।

विजय कुमार शास्त्री
एम.ए. आचार्य, श्री महावीर जी

'जिनभाषित' पत्रिका जैन धर्म के सिद्धान्त को जन-मानस तक पहुँचाने का अद्भुत प्रयास है। गुरुणां गुरु आचार्य श्री शांति सागर जी की स्मृति में समाधि-दिवस पर प्रकाशित जुलाई-अगस्त अंक पढ़ा। मुनि श्री क्षमासागर जी द्वारा लिखित आचार्य ''श्री शांतिसागर जीवन यात्रा एवं वचनामृत'' लेख पढ़ा, मन हर्ष से ओत-प्रोत हो गया। आचार्य श्री विद्यासागर जी ने बहुत अच्छा लिखा कि दीक्षा दिवस का अर्थ है - संकल्प दिवस। इस दिवस के माध्यम से अपने संकल्प को दृढ़ बनाया जा सकता है। 'एक वृक्ष की अन्तर्वेदना' पढ़कर तो मन द्रवित हो उठा। ऐसी संवेदनशील कथाएँ कहीं मन को छू लेती हैं और आवरण पृष्ठ पर छपी श्रद्धेय क्षमासागर जी की ये पंक्तियाँ भी हृदयस्पर्शी हैं-

श्रद्धा से झुककर गलाते जायें
अपना मान - मद
पर्त दर पर्त निरन्तर ताकि
कम होता जाये
हमारे और प्रभु के बीच का अंतर।

उन्हें मेरा शत-शत प्रणाम। एक निवेदन है, एकीभाव स्तोत्र का हिन्दी अर्थ क्षमासागर जी द्वारा प्रस्तुत दो-दो, तीन-तीन काव्य यदि प्रत्येक अंक में क्रमबद्ध प्रकाशित हों, तो जनमानस इसका पूरा लाभ उठा सकेगा, क्योंकि 'एकी भाव -स्तोत्र' लोग उतना नहीं पढ़ते, जितना 'भक्तामर स्तोत्र'। 10 अक्टूबर को मुनिश्री ने जब 'एकीभाव-स्तोत्र' पढ़ा, तो ऐसा लगा जैसे यह हमारे घट तक पूरा का पूरा, ज्यों का त्यों उतर रहा है।

अरुणा जैन
92/20/2:4 से.-16,
वाशी नगर, नवी मुम्बइ

'जिनभाषित' के अंक 2,3 (संयुक्तांक) और अंक 4 सामने हैं। निश्चित रूप से आपके सम्पादन में यह पत्रिका जैन पत्रकारिता जगत में अपना स्थान शीघ्र ही बना लेगी। आपका एवं प्रकाशक संस्थान का अभिनन्दन। बधाई स्वीकारें।

कुसुम जैन
संपादिका - 'णायसायर'
सचिव, सहजानन्द फाउन्डेशन, बी-5/263,
यमुना विहार, दिल्ली-110053

'जिनभाषित' के जून 2001 के अंक के लिये कृतज्ञ हूँ। यह अंक मुनिपुंगव विद्यासागर जी पर विशिष्ट सामग्री प्रस्तुत करता है एवं इतर सामग्री भी पर्याप्त उपादेय है। आपके अग्र लेख भी परम्परा और प्रगति के साथ व्यक्तित्व की छाप से अभिषिक्त रहते हैं। यह विशिष्ट आकर्षण होता है, इस पत्रिका का।

कृपया नवोदित लेखकों को अधिक प्रोत्साहन दें, कल उनका है।

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन
13, शक्ति नगर, पल्लवरम्, चेन्नई-43

सितम्बर 2001 का 'जिनभाषित' प्राप्त हुआ। प्रातः स्मरणीय प.पू. 108 आचार्य श्री वीरसागर जी की पद्मासनी प्रतिमा का मुखपृष्ठ छायाचित्र अतीत क्षणों को स्मृति पटल पर तरंगित कर रहा है। साक्षात् वर्तमान के रूप में अतीत ने अर्धशतकापरांत मुझे पावन किया था।

आचार्य श्री की छत्रछाया में जयपुर (खानिया) चातुर्मास में प्रथम पट्टाधीश के रूप में कुंथलगिरी से चारित्र्य चक्रवर्ती 108 आ.श्री शांतिसागर जी द्वारा आचार्य पदासीन कमंडलु पिछी स्वीकारने का भव्य समारोह चतुर्विध संघ का सुदर्शनीय था। प्रथम पट्टाधीश के मानसपुत्र, संघ संचालक प्रतिष्ठाचार्य, बंधु ब्र. सूरजमलजी के भव्य आयोजन का अर्धशतकपूर्व ऐतिहासिक घटनाओं का 'चित्रपट' दिखाई पड़ा। विशाल चतुर्विध (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) संघ लगभग 50 से ज्यादा संख्या में आचार्य श्री की वात्सल्यमयी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छत्रछाया में चातुर्मास संपन्न कर रहा था। आचार्य श्री का आचार्य पद विभूषित रूप 'जल में भिन्न कमल' के सदृश ही था। 'अर्वाग् विसर्ग वपुषा एवं मोक्षमार्ग निरूपयन्तम्' की मुद्रा देखते ही भूले भटके कई भव्यजीवों ने भवतारक काष्ठ नौका का आश्रय लिया था। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे जे आचारहिं ते नर न घनेरे' ऐसी स्व पर उद्धारकचर्यारत आचार्यश्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग में लीन रहते थे। संघस्थ साधु-साध्वियों का स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा, भक्तिपाठ, सूक्ष्म अध्ययन-अध्यापन मैंने प्रत्यक्ष देखा, अनुभव किया है। बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी के अनंतर प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी, पू. शिवसागर जी, पू. धर्मसागर जी, पू. अजितसागर जी, श्री वर्धमान सागर जी, पू. अभिनंदन सागर जी, आचार्यकल्प श्रुतसागर जी, विदुषी आर्यिका माताजी गणिनी ज्ञानमती जी, सुपार्श्वमतीजी, विशुद्धमतीजी, स्व. जिनमतीजी संघस्थ शताधिक माताजी और विद्यमान आचार्य प.पू. 108 विद्यासागर जी अन्य परंपरा के स्व. देशभूषण जी (एलाचार्य जी) प्रायः सभी महान साधुवृंद का पावन दर्शन, आहारदान, स्वाध्याय द्वारा उद्बोधन आदि का परिसंस्पर्श होकर मेरा भी जीवन धन्य हुआ, संतृप्त हुआ है। आ. श्री स्व. चंद्रमती माताजी (मेरी पूर्वाश्रमीय जन्मदा) के दीक्षा गुरु थे। प्रायः उनके मोहवश मैं हर साल संघदर्शनार्थ चौमासा में राजस्थान के सभी नगरों में जाया करती थी। आहारदान, तत्त्वसंगोष्ठी, स्वाध्याय, वैयावृत्यादिक का लाभ लिया करती थी। सोलापुर श्राविकासंस्था की स्व. ब्र. सुमतीबाई जी तथा बहन प्रभावती जी साथ थीं। आज श्री 105 प.पू. सुपार्श्वमती माताजी की संघस्था 105 आर्यिका सुप्रभावती जी अंतिम धर्मसाधना में अमूल्य क्षण बिता रही हैं।

मैंने आचार्य श्री जी की प्रेरणा से 'सप्तम प्रतिमा' का व्रत धारण किया और उज्ज्वल दिशा जीवन की पग डंडियो पर हूँ। आचार्य श्री के 42 वें पुण्यतिथि के पावन अवसर पर त्रिदिवसीय तत्त्वचर्चा में जयपुर में आक्टो, 99 में उपस्थिती का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आचार्य श्री विद्यासागर जी के पट्टशिष्य पं. रतनलाल जी बैनाड़ा ने 'जिनभाषित' के अंक नियमित पढ़ने का सुअवसर दिया है। अंक के सुनहरे पन्नों द्वारा मैं खूब प्रभावित होकर अगले अंक की प्रतीक्षा करती हूँ।

ब्र.कु. विद्युल्लता हिराचन्द शहा , संपादिका-'श्राविका'
श्राविका संस्थानगर,
197, बुधवार पेठ, श्राविका चौक,
सोलापुर (महा.)

'जिनभाषित' सितम्बर 2001 में आपके सम्पादकीय आलेख 'वैराग्य जगाने के अवसरों का मनोरंजनीकरण' ने हृदय को छू लिया। मिथ्यात्व किस-किस रूप में धर्म में प्रवेश पा रहा है, इसका लेख में तथ्यात्मक मनोवैज्ञानिक विवेचन किया गया है। सचमुच फिल्मी संगीत कड़वी दवा के लिये चाशनी के समान नहीं, बल्कि मदिरा की बूँदों के समान है। हम जितनी जल्दी इस सच को समझ सकें, उतनी जल्दी धर्म के नाम पर व्याप्त इस विष से छुटकारा पाने में समर्थ होंगे। माननीय 'मुख्तार' जी का 'भवाभिनन्दीमुनि और मुनिनिन्दा' लेख झूठे मुनियों से बचकर सच्चे मुनियों के प्रति भक्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

अरविन्द फुसकेले
ई.डब्ल्यू.एस.-541, कोटरा,
भोपाल-462003

धार्मिक एवं वैवाहिक अनुष्ठान तथा सात्त्विक संगीत नृत्य

सुरेश जैन, आई.ए.एस.

जिनभाषित के सितम्बर, 2001 के अंक में 'वैराग्य जगाने के अवसरों का मनोरंजनीकरण' एवं अक्टूबर, 2001 के अंक में 'विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान' शीर्षक से प्रकाशित जिनभाषित के दोनों संपादकीय हमारी ज्वलंत धार्मिक एवं सामाजिक समस्याओं की ओर प्रभावी ढंग से प्रत्येक पाठक का ध्यान आकर्षित करते हैं और हमें गहन मनन और चिंतन कर ठोस निर्णय करने और उनका कार्यान्वयन करने के लिये प्रेरित करते हैं। यह आवश्यक ही नहीं, प्रत्युत अनिवार्य हो गया है कि ऐसे धार्मिक एवं सामाजिक अवसरों पर हमारे युवक/युवतियों का व्यवहार संयमित, शालीन एवं परिष्कृत हो।

संपादक महोदय ने अपने दोनों संपादकीय आलेखों में इन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रस्तुत किया है, उन्हें लीड बनाया और जनसरोकार की चिंता को मीडिया के केन्द्र में स्थापित किया है। इस प्रकार उन्होंने महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को मुख्य धारा में लाकर जैन पत्रकारिता को नई ऊँचाई प्रदान की है। निश्चित ही यह जिनभाषित का उल्लेखनीय, असाधारण, साहसिक और स्वागत योग्य अवदान है।

हमें सर्वसम्मति से यह निर्णय करना चाहिए कि भक्ति और वैराग्य का वातावरण बनाने के लिए मंदिरों में हम केवल धार्मिक/शास्त्रीय राग-रागिनियों का ही प्रयोग करें। पवित्र वाद्यों के द्वारा सात्त्विक/संयमित नृत्य एवं संगीत का सृजन करें। धार्मिक नृत्य एवं गीत सात्त्विक संगीत पर ही आधारित हों।

जिनभाषित के संपादकीय से प्रभावित होकर दैनिक भास्कर, भोपाल ने 2 नवम्बर 2001 को प्रकाशित अपने संपादकीय में महाकवि सूरदास के पद 'नाच्यो बहुत गुपाल' के माध्यम से सम्पूर्ण समाज का ध्यान आकर्षित करते हुए विवाह एवं बारातों में दूल्हे के आगे पाश्चात्य तर्ज पर युवक/युवतियों द्वारा किये जा रहे नृत्य को संयमित करने की आवश्यकता प्रतिपादित की है।

जिनभाषित के संपादकीय आलेख से प्रेरणा लेते हुए 'पूज्य सिंधी पंचायत, भोपाल' ने औपचारिक रूप से युवतियों को सलाह दी है कि वे बारात के अवसर पर बीच सड़क पर नाच नहीं करें।

धार्मिक एवं वैवाहिक अनुष्ठानों में ध्वनि प्रदूषण को प्रतिबंधित करना भी आवश्यक है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश पारित किया है कि धर्म के नाम पर भी किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी पूजा और प्रार्थना के माध्यम से दूसरों की शांति भंग करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिक अवसरों पर लाउडस्पीकर, ड्रम, बैंड-बाजे आदि का उपयोग विधि-विरुद्ध है। माननीय न्यायालय ने बताया कि वृद्ध, बीमार तथा छोटे बच्चों पर ध्वनि प्रदूषण का दुष्प्रभाव गंभीर होता है। अतः सभ्य समाज में किसी को भी ऐसे कार्य करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जिससे वृद्ध या असहाय अथवा बीमार व्यक्तियों के आराम में खलल पड़े, शिशुओं की निद्रा भंग हो या विद्यार्थी व अन्य कार्यरत व्यक्तियों की पढ़ाई या कार्य में बाधा पड़े। विद्यार्थियों को अधिकार प्राप्त है कि वे शांतिपूर्ण वातावरण में पढ़ाई कर सकें और पड़ोसियों का कर्तव्य है कि उनकी पढ़ाई में खलल न डालें। इसी प्रकार वृद्ध, असहाय और बीमार लोगों को अधिकार प्राप्त है कि वे ध्वनि प्रदूषणरहित वातावरण में शांतिपूर्वक रह सकें।

वातावरण प्रदूषण नियंत्रण विधि के अनुसार रहवासी क्षेत्र में ध्वनि की मात्रा दिन में 55 डेसीमल तथा रात्रि में 45 डेसीमल से अधिक नहीं होनी चाहिए, परन्तु 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के मानकों के अनुसार, निद्रास्थल में ध्वनि प्रदूषण 30 डेसीमिल से अधिक होना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। चूँकि किसी भी विवाह तथा धार्मिक या सामाजिक उत्सव में ध्वनि प्रदूषण 100 डेसीमल से ऊपर ही होता है। अतः यह नितांत आवश्यक है कि रहवासी क्षेत्रों में मांगलिक उत्सव या विवाह स्थल चलाने पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाए। ध्वनिप्रदूषण से एक ओर जनस्वास्थ्य प्रभावित होता है तथा दूसरी ओर उससे व्यक्ति की प्रवृत्ति आक्रामक हो जाती है और वह हिंसक हो जाता है।

सम्पूर्ण विश्व में विवाह स्वाभाविक हर्ष/आनन्द का महत्त्वपूर्ण अवसर होता है और यह आनन्द नृत्य एवं गायन के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। अतः प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था वैवाहिक अवसरों पर शालीनतापूर्वक नृत्य एवं गायन की स्वीकृति प्रदान करती है। शालीन एवं संयमित आचरण हमारे युवक-युवतियों के मस्तिष्क को संस्कारित करता है और उन्हें सभ्य एवं शिक्षित समाज में प्रतिष्ठित करता है। जब ऐसे नृत्य एवं गायन, संयम एवं शालीनता की सीमाएँ लाँघकर कामुकता, अपसंस्कृति, फूहड़ता एवं असामाजिकता के क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं तब अनेक अवांछनीय समस्याएँ जन्म ले लेती हैं। इन समस्याओं एवं उनसे उत्पन्न सामाजिक तथा आध्यात्मिक विरूपण से बचने के लिये आवश्यक है कि इस विषय में पहले से ही हमारे आध्यात्मिक एवं सामाजिक नेतृत्व द्वारा प्रतिबंधात्मक कार्यवाही की जाए।

हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि 'जिनभाषित' सोद्देश्यता और प्रामाणिकता के साथ आदर्श, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, नैतिक मानदण्डों एवं शाश्वत मूल्यों की स्थापना एवं विघटनशील सामाजिक चेतना के पुनर्जागरण के प्रति प्रयत्नशील है।

हमारे राष्ट्र एवं समाज का सर्वतोमुखी विकास हमारे कर्तव्यनिष्ठ सुसंस्कृत एवं प्रतिभासम्पन्न युवक-युवतियों पर ही आधारित है। यह हमारा महत्त्वपूर्ण सामाजिक कर्तव्य एवं मानवीय उत्तरदायित्व है कि हम अपने युवाओं को सतत संस्कारित करें जिससे कि वे अपना सर्वतोमुखी विकास कर सकें और राष्ट्र के कर्तव्यनिष्ठ नागरिक बन सकें। जैसे हमारे प्रतिष्ठाचार्य पत्थर या धातु की मूर्तियों का पंचकल्याणक कर उन्हें भगवान बना देते हैं, वैसे ही 'जिनभाषित' अपनी युवा प्रतिभा को संस्कारित कर उन्हें सच्चा एवं बेहतर इन्सान बनाने के लिये प्रयत्नशील है। मुझे विश्वास है कि 'जिनभाषित' के प्रयत्न निश्चित ही सफल होंगे और हमारे युवा आधुनिक दृष्टि, स्वस्थ विचार और उत्कृष्ट जीवन मूल्यों को अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महत्त्व देते हुए अपनी सर्वतोमुखी प्रगति कर सकेंगे।

हमारी यह पवित्र भावना है कि हमारे युवा कर्म के साथ धर्म को जोड़कर प्रत्येक कर्म को सत्कर्म बनाएँ। विचार के साथ धर्म को जोड़कर प्रत्येक विचार को सदविचार बनाएँ। संकल्प के साथ धर्म की जोड़कर प्रत्येक संकल्प को सत्संकल्प बनाएँ। भावना के साथ धर्म को जोड़कर प्रत्येक आचार को सदाचार बनाएँ। जीवन के प्रत्येक पक्ष के साथ धार्मिक विवेक जोड़कर सभी पक्षों को उज्ज्वल बनाएँ। युवक एवं युवतियों से मेरा विनम्र आग्रह है कि वे विश्व की भौतिक उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिये आवश्यक प्रयास करें, यथाशक्ति धनसंपदा अर्जित करें, किन्तु साथ ही जैन साहित्य का अध्ययन कर और जैन संस्कृति को अपनाकर मानवीय जीवन का सार प्राप्त करने के लिये ठोस प्रयत्न करें, जिससे कि हमें शाश्वत सुख एवं संतोष प्राप्त हो सके।

30, निशात कालोनी,
भोपाल - 462003, म.प्र.

योग्य विधानाचार्य एवं प्रवचनकार उपलब्ध

सांगानेर (जयपुर)। प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के शुभाशीर्वाद एवं मुनिश्री सुधासागर जी महाराज की प्रेरणा से विगत 5 वर्ष की अल्पावधि की उपलब्धि के क्रम में श्री दि. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर में सभी धार्मिक पर्व, दशलक्षण पर्व, अष्टाह्निका पर्व, मंदिर वेदी प्रतिष्ठा, नैमित्तिक पर्व एवं अन्य विधि विधान आदि महोत्सव सम्पन्न कराने हेतु सुयोग्य प्रभावी विद्वान वक्ता उपलब्ध हैं।

अष्टाह्निका पर्व में विधि-विधान एवं प्रवचनार्थ आप अपने आमंत्रण पत्र संस्थान कार्यालय में अथवा फोन से सम्पर्क करें ताकि समय रहते व्यवस्था की जा सके।

पं. प्रद्युम्न कुमार शास्त्री, व्याख्याता
जैन नसियाँ, नसियाँ रोड, सांगानेर-303902 जयपुर (राज.)
फोन-0141-730552
मोबाईल-98290-81553

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

धर्म का भावकाण्ड नदारद

श्रावकधर्म चार काण्डों का समूह है : कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, व्रतकाण्ड और भावकाण्ड।

कर्मकाण्ड : पूजा-भक्ति, विधान, हवन, पंचकल्याणक, गजरथ, प्रतिष्ठा, जप, पाठ, साधुसन्तों की सेवा, तीर्थ-वन्दना, जन्म जयन्ती, निर्वाणमहोत्सव, क्षमावाणी पर्व आदि का मनाया जाना।

ज्ञानकाण्ड : शास्त्रों का अध्ययन, उपदेश-श्रवण, शंकास-माधान, धर्मग्रन्थ-लेखन, प्रवचन, शोधकार्य, संगोष्ठियों में शोध-पत्रवाचन, शिक्षण-प्रशिक्षण-शिविरों का संचालन आदि।

व्रतकाण्ड : अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षव्रत, एकाशन, उपवास, रविवार, सुगन्धदशमी, सोलहकारण आदि व्रत-नियमों का पालन, श्रावक-प्रतिमाओं का अंगीकरण।

भावकाण्ड : विनय, वात्सल्य, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ्य, क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच (निर्लोभ), हितमितप्रिय-वचन, निःकांक्षितत्व, औदार्य आदि आत्मगुणों का विकास।

इनमें से श्रावकों के जीवन में कर्मकाण्ड पहले नम्बर पर दिखाई देता है, ज्ञानकाण्ड दूसरे नम्बर पर है, व्रतकाण्ड तीसरे नम्बर पर और भावकाण्ड प्रायः नदारद है। इसके दर्शन विरले ही श्रावकों में होते हैं।

कर्मकाण्ड

वर्तमान में श्रावकों का धर्म कर्मकाण्ड-प्रधान बन गया है। आये दिन विभिन्न प्रकार के विधानों, यज्ञों, पंचकल्याणकों और गजरथों का आयोजन हो रहा है। इनमें भाग लने के लिये लोग बहुत उत्साह दर्शाते हैं। चक्रवर्ती, इन्द्र-इन्द्राणी, कुबेर आदि के पद धारण करने के लिए होड़ सी मच जाती है। यह शुभ लक्षण है। इस रागरंगमय भोगप्रधान युग में धार्मिक अनुष्ठानों में रुचि होना इस बात का सूचक तो है ही कि मनुष्य सर्वथा नास्तिक नहीं हुआ है, धर्म में उसकी आस्था जीवित है और वह पुष्ट हो रही है।

किन्तु हम पाते हैं कि यह कर्मकाण्ड भावकाण्ड से प्रायः शून्य होता है। लोग प्रतिदिन पूजा-भक्ति करते हैं, विधानों और पंचकल्याणकों में इन्द्र-इन्द्राणी बनकर भगवान् को पूजते, नाचते-गाते हैं, तीर्थवन्दना के लिये जाते हैं, साधु सन्तों की सेवा करते हैं, आहारदान देते हैं, किन्तु उनमें जनसामान्य के प्रति विनय, वात्सल्य, मैत्री, कारुण्य, उदारता आदि आत्मिक गुणों का अस्तित्व दिखाई नहीं देता। उक्त कर्मकाण्ड करते समय भी उनके हृदय के अनौदार्य, अवात्सल्य, अविनय, असहिष्णुता आदि कुत्सितभाव प्रकट हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, जब वे कर्मकाण्ड में प्रवृत्त होते हैं तब लौकिक पदार्थों के समान कर्मकाण्ड के अवसरों और सुविधाओं को भी स्वयं ही अधिक से अधिक हथिया लेने का प्रयत्न करते हैं और इस बात की परवाह नहीं करते कि दूसरे उनसे वंचित रह जायेंगे। जैसे कोई विधान चल रहा होता है तो स्त्रियाँ पहले से आकर पूजा के लिए अच्छे स्थान पर कब्जा कर लेती हैं, साथ ही अपनी बहन, ननद, भाभी और सहेलियों के लिए भी रेलगाड़ी या बस के समान आसपास की जगह सुरक्षित कर लेती हैं, ताकि देर से आने पर भी उन्हें अच्छा स्थान मिल जाए। उस पर वे किसी अन्य स्त्री-पुरुष को नहीं बैठने देतीं। यदि कोई जिद करके बैठ जाता है तो उनका क्रोध उमड़ पड़ता है, वाग्युद्ध छिड़ जाता है। इस प्रकार कर्मकाण्ड के लिए भावकाण्ड (न्याय, सहिष्णुता, विनय वात्सल्य आदि) की बलि चढ़ा दी जाती है।

मुनियों को आहार हेतु पड़गाहने के लिए जब मंदिर या धर्मशाला के विशाल परिसर में चौकेवाले लाइन से खड़े होते हैं, तब अनेक चौके वाले अपना स्थान छोड़कर दूसरों के आगे आ जाते हैं, ताकि मुनि महाराज की नजर उनपर ही पड़े, और उन्हें ही आहारदान का अवसर मिल जाए। इस प्रकार आहारदान की पुण्यक्रिया करते समय भी दूसरों की आहारदानक्रिया में विघ्न उपस्थित करने का कुत्सित भाव मन में आ जाता है। तथा जिस चौके में मुनिश्री की पड़गाहना होती है, उसमें बाहर के श्रावक आकर घुस जाते हैं और अपने हाथ से उठा-उठा कर आहार देने लगते हैं तथा वहाँ से टस से मस नहीं होते। इस प्रकार जिन्होंने चौका लगाया है उन्हें आहार देने का मौका ही नहीं मिल पाता। वे विषादग्रस्त होकर दूर खड़े-खड़े देखते रहते हैं। अन्त में एकाध अंजली जल देने का उन्हें मौका मिल जाता है तो वे अपना अहोभाग्य समझते हैं। इस तरह चौकेवालों को आहारदान से वंचित कर उनके पुण्य पर डाका डालने का जो काम किया जाता है, वह धर्मकार्य के प्रसंग में भी हमारी सांसारिक स्वार्थवृत्ति के प्रकट होने का प्रमाण है।

इसी प्रकार सिद्धचक्रादि विधानों की पूजा में बैठे हुए श्रावकों को जो लोग द्रव्य वितरित करते हैं उनकी दृष्टि स्वपर-भेदविज्ञान से प्रभावित हो जाती है। अपने परिचितों को जब पूजाद्रव्य वितरित करते हैं तब उनके हाथ में बादाम, लौंग, छुहारे आदि बहुमूल्य पदार्थ आते हैं, किन्तु अपरिचितों को वितरित करते समय उनकी मुट्ठी केवल हरसिंगार से रँगे चावल ही ग्रहण करती है।

सामूहिक भोजनशाला में भी भोजन परोसते समय स्वपरभेद विज्ञान काम करता है। मित्रों और सम्बन्धियों की थाली में भोज्य पदार्थ पंक्तिक्रम का उल्लंघन करते हुए जल्दी-जल्दी आकर विराजमान हो जाते हैं, जबकि अन्यों की थाली उपेक्षा की पीड़ा से सिसकती हुई परोसनेवालों को याचनाभरी निगाहों से निहारती रहती है। मिष्टान्न परोसते समय तो स्वपर भेद विज्ञान चौदहवें गुणस्थान में पहुँच जाता है। किसी की थाली में लड्डू या बरफी का टुकड़ा एक बार भी नहीं आता, जबकि किसी-किसी की थाली में बिना बुलाये बार-बार महमान बनता रहता है। यहाँ भी हमारी रागद्वेषवृत्ति काम करने लगती है।

हमने देखा है कि जो लोग सिद्धचक्रादि विधानों में इन्द्र-इन्द्राणी बनकर भक्तिभाव से पूजा करते हैं, रातदिन साधुसन्तों की वैयावृत्य में लगे रहते हैं वे अपने शासकीय कार्यालयों में घूँसखोरी के अवसरों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की तलाश करते रहते हैं और यदि उनका कोई उच्च अधिकारी इसमें बाधा डालता है तो वे उस पर प्राणघातक हमला कर देते हैं। उनका क्रोध इस हद तक चला जाता है कि उस पद पर यदि साधर्मीबन्धु होता है तो उसे भी नहीं बख्शते। यह साधर्मी पर प्रहार नहीं, धर्म पर ही प्रहार है, क्योंकि आचार्य समन्तभद्र ने कहा है - 'न धर्मो धार्मिकैर्विना।'

इतना ही नहीं, ये कर्मकाण्डप्रेमी एक ओर विश्वशान्ति महायज्ञ का आयोजन करते हैं और हवन कुण्ड में विश्वशान्ति की कामना करते हुए आहुतियाँ प्रदान करते हैं, दूसरी ओर अपने ही साधर्मी बन्धुओं के हाथ से किसी तीर्थ, मंदिर या धर्मशाला का कब्जा हथियाने के लिए लाठियों के प्रहार से उनका सिर फोड़ देते हैं। कहीं-कहीं यह भी देखा जाता है कि धार्मिक अनुष्ठानों या मंदिर आदि के निर्माण के लिये इकट्ठे किये गये धन को कुछ अति धर्मात्मा श्रावक विभिन्न तरीकों से हड़प लेते हैं। वस्तुतः वे इसे अपना उद्योग ही बना लेते हैं। इसीलिए ऐसे श्रावक धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन हेतु जी जान से पुरुषार्थ करते हैं।

बोलियों का द्वन्द्वात्मक मनोविज्ञान

वर्तमान में कर्मकाण्डों के आयोजन हेतु धन जुटाने की जो पद्धति है वह भी भावकाण्ड को चोट पहुँचानेवाली है। इसमें धन जुटाने के लिये इन्द्र, चक्रवर्ती, कुबेर आदि पदों के लिए नीलामी बोलियाँ लगायी जाती हैं। यह धन जुटाने की मनोवैज्ञानिक पद्धति है। इससे मनुष्य की मानकषाय तुष्ट होती है। मनुष्य में दूसरों को हीन और स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की, दूसरों की पराजय और अपनी विजय का झण्डा लहराते हुए देखने की आदिम प्रवृत्ति होती है। इसे मानकषाय कहते हैं। नीलामी बोलियाँ इस आदिम प्रवृत्ति को तुष्ट करने का अवसर देती हैं। जब किसी पद के लिए नीलामी बोली लगती है, तब श्रावकों में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न हो जाती है, एक बोलीयुद्ध शुरु हो जाता है। इसमें जो बोली जीत लेता है वह समाज में आदरणीय और प्रशंसनीय बन जाता है। अतः बोली युद्ध में प्राप्त विजय उसे असीम आनन्द का अनुभव कराती है। इस आनन्दानुभूति के लिए मनुष्य ऊँची से ऊँची बोली लगाने की कोशिश करता है, फलस्वरूप अधिक से अधिक धन इकट्ठा हो जाता है। इस प्रकार नीलामी बोली धन जुटाने का मनोवैज्ञानिक उपाय है।

यदि यह उपाय न अपनाया जाए तो पंचायती कार्य के लिये धनी से धनी आदमी भी इतना पैसा गाँठ से निकालने के लिये तैयार नहीं होगा। पहले ये कर्मकाण्डीय आयोजन पंचायती नहीं होते थे, अपितु कोई एक व्यक्ति स्वयं उनका आयोजन करता था और सारे धन की व्यवस्था उसी के द्वारा की जाती थी। इसके पीछे उसकी धर्मसाधना की भावना होती थी, कषायतुष्टि की नहीं। इसलिये नीलामी बोलियों की आवश्यकता नहीं होती थी। आजकल सारे धार्मिक अनुष्ठान पंचायती होने लगे हैं, इसलिये नीलामी बोलियाँ आवश्यक हो गई हैं।

धार्मिक अनुष्ठानों के पंचायती हो जाने के कारण व्यवस्था बनाने के लिए भी बोलियाँ एक मनोवैज्ञानिक उपाय होती हैं। यदि नीलामी बोली न रखी जाये तो समाज के सभी लोग इन्द्र-इन्द्राणी, चक्रवर्ती आदि बनने के लिये तैयार हो जायेंगे, किन्तु सबका इन्द्र-इन्द्राणी आदि बनाना संभव नहीं है, क्योंकि सौधर्म इन्द्र, कुबेर, चक्रवर्ती आदि के पद एक-एक ही होते हैं। अतः हजारों लोगों में से कुछ ही लोगों को चुनना आवश्यक हो जाता है। यह चुनाव इन्द्रादि पदों की नीलामी बोली द्वारा ही सरलतया हो पाता है।

किन्तु इसका एक प्रतिपक्षी मनोविज्ञान भी है। इसके साथ एक ऐसी बुराई जुड़ी हुई है जो बहुत खतरनाक संदेश देती है। नीलामी बोली लगाने का मतलब है धनवान् को धार्मिक कार्यों में प्रमुखता देकर धन को सम्मानित करना और निर्धनता को अपमानित करना, लोगों के मन में यह भाव भरना कि धन के सामने विद्वत्ता, सौजन्य (निर्लोभ, न्याय-मार्गावलम्बन, अनुकम्पा, औदार्य) आदि अन्य गुण तुच्छ हैं। जो लोग बोली युद्ध में निर्धनता के कारण पराजित हो जाते हैं, वे हीनता के भाव से ग्रस्त हो जाते हैं। उनके मन में यह भाव उत्पन्न होता है कि धन ही समाज में सम्मान और धार्मिक कार्यों में प्रमुखता पाने का एकमात्र साधन है। यह भाव उनके मन में अपरिग्रह की निस्सारता और धन की सारमूलता में आस्था पैदा करता है। फलस्वरूप वे भी धनार्जन को जीवन का साध्य बना लेते हैं और जिन अच्छे-बुरे तरीकों से दुनिया के लोग धन कमाते हैं, उन्हीं तरीकों से वे भी कमाने में लग जाते हैं। नीलामी बोलियाँ यह अधःपतनकारी सन्देश देती हैं। पूज्यपादस्वामी ने कहा है कि दान के भाव से धन कमाना पुण्य के भाव से पाप करना है-

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः सञ्चिनोति यः।
स्वशरीरं स पङ्केन स्नास्यामीति विलिम्पति।।

दूसरी ओर बोलीयुद्ध में दिग्विजय प्राप्त करनेवाले की मानकषाय का ठिकाना नहीं रहता। पहले वह धन को सारभूत समझने वाले लौकिक पुरुषों के बीच में ही सम्मानित होता था, अब धन को निस्सार समझने वाले कुछ साधुसन्तों के बीच में भी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है। फलस्वरूप उसकी मानकषाय में चार चाँद लग जाते हैं। दूसरी बात यह कि धन के द्वारा धर्मक्षेत्र में दिग्विजय प्राप्त कर लेने के बाद उसकी धनाकांक्षा पर विराम लग जाता हो, उसकी आरम्भ-परिग्रह की प्रवृत्ति परिमित हो जाती हो, सो बात नहीं है। उसका न्याय-अन्यायपूर्ण तरीकों पर आधारित धनार्जनतन्त्र ज्यों का त्यों चलता रहता है। अर्थात् बोलीयुद्ध में विजय प्राप्त कर पाण्डुकशिला पर भगवान का अभिषेक करते हुए भी वह लोभकषाय और मानकषाय की बेड़ियों में ज्यों का त्यों जकड़ा रहता है, उसके धनार्जनतन्त्र में अनैतिक मार्ग का अवलम्बन यथावत् कायम रहता है। इस प्रकार कर्मकाण्ड ही फलता-फूलता रहता है, भावकाण्ड नदारद रहता है। वस्तुतः दान करना निर्लोभ होने का लक्षण नहीं है, दान करना तो अकृपण या उदार होने का लक्षण है। अनावश्यक धन कमाने की लालसा न होना निर्लोभ होने का लक्षण है।

बोलीपद्धति की बुराई को सीमित करने का एक उपाय यह हो सकता है कि जैसे लोकसभा के लिये वोटों से चुनाव होता है और राज्यसभा के लिए कुछ सदस्य साहित्य, कला आदि के क्षेत्रों में विशिष्ट योगदान करने वालों में से मनोनीत किये जाते हैं, वैसे ही इन्द्रादि पदों के लिए कुछ लोगों का चुनाव नीलामी बोली के माध्यम से किया जाय और कुछ लोगों को विद्वानों और सज्जनों के बीच से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामांकित किया जाए। शायद इससे केवल धन ही महिमामंडित नहीं होगा, विद्वत्ता और सज्जनता को भी प्रतिष्ठा मिलेगी, फलस्वरूप लोग धार्मिक अनुष्ठानों में प्रमुखता पाने के लिये विद्वान् और सज्जन बनने का भी प्रयत्न करेंगे।

ज्ञानकाण्ड

यद्यपि ज्ञानकाण्ड की प्रवृत्ति कर्मकाण्ड की अपेक्षा दूसरे नम्बर पर है, फिर भी व्रतकाण्ड और भावकाण्ड से अधिक है। किन्तु वह भी प्रायः भावकाण्ड से विरक्त होकर चल रहा है। स्वाध्याय होता है, किन्तु कुछ स्वाध्यायी अनेकान्तवाद का गला घोंट कर एकान्त निश्चयवाद या एकान्त व्यवहारवाद का प्रचार करते हैं। शास्त्रों के अनुवाद और भावार्थ में आगमविरुद्ध स्वाभीष्ट मान्यताओं का अपमिश्रण कर सर्वज्ञ की वाणी को दूषित करते हैं। मान लेते हैं कि वर्तमान में कोई सच्चा मुनि हो ही नहीं सकता। फलस्वरूप वे सच्चे मुनियों को भी 'नमोऽस्तु' नहीं करते, न उनका प्रवचन सुनते हैं, न उन्हें आहार देते हैं। वे मिथ्या मुनियों के समान सच्चे मुनियों की भी निन्दा करते हैं। सच्चे मुनियों की जगह वे निश्चयाभास का प्रतिपादन करने वाले पण्डितों के प्रवचन सुनते हैं और उनके द्वारा लिखित-अनुवादित ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं तथा उन्हें ही मन्दिरों में रखते हैं, ताकि उनकी एकान्तवादी मान्यताएँ सभी श्रावकों के मस्तिष्क में प्रविष्ट हो जाएँ। अतः जब कोई सर्वज्ञ के मूल उपदेश की रक्षा के लिए उन ग्रन्थों को मंदिर से हटाने का प्रयत्न करता है, तो उन्हें भद्दी गालियों से अपमानित किया जाता है। दूसरा पक्ष भी युक्ति और सहिष्णुता से काम नहीं ले पाता, जिससे मारपीट हो जाती है। मामला पुलिस में चला जाता है। लोग हँसते हैं कि महावीर के उपदेशों से विश्व की समस्याएँ सुलझाने का उपदेश देने वाले जैन खुद अपनी समस्याएँ महावीर के उपदेशों से नहीं सुलझा पाते और उन्हें पुलिस तथा कोर्ट का सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकार जैन ही महावीर के उपदेशों को बदनाम करने की चेष्टा में लगे हुए हैं।

यह मारपीट मुनिभक्तों और मुनिनिन्दकों में ही होती हो, सो नहीं। मुनिभक्तों में भी परस्पर हो जाती है। पर उसका कारण शास्त्र नहीं, अपितु मन्दिरों और क्षेत्रों का स्वामित्व तथा उपजातीय विद्वेष होता है। सागर (म.प्र.) में घटी ताजा घटना इसका उदाहरण है। वहाँ मुनिभक्तों के परस्पर विरोधी गुटों ने मंगलगिरि को अमंगलगिरि बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। स्वाध्याय करते हुए श्रावक रटते रहते हैं-

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिन मूरत चिन्मूरत अनूप।।
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ता को न जान विपरीत मान, करि करें देह में निज पिछान।।

फिर भी उन्हें आत्मा और देह की भिन्नता का ज्ञान नहीं होता। वे देहाश्रित उपजातियों के आधार पर साधर्मियों को भी श्रेष्ठ और हीन, शिष्ट और दुष्ट मानते हैं। उपजाति और कुछ नहीं, स्थानादि की समानता के कारण समुदायविशेष के लिये प्रसिद्ध हआ एक नाम है। इन भिन्न-भिन्न नामोंवाले प्रत्येक समुदाय या उपजाति में श्रेष्ठ और हीन पुरुष होते हैं। किन्तु हम अपनी उपजाति के लोगों को सर्वथा श्रेष्ठ और शिष्ट तथा दूसरी उपजाति के लोगों को सर्वथा हीन और दुष्ट मानते हैं तथा दूसरी उपजाति वालों से घोर ईर्ष्या, द्वेष और घृणा करते हैं, उनके बारे में दुष्प्रचार करते हैं, उनकी छबि को दूषित करते हैं, उनकी प्रगति में रोड़े अटकाते हैं तथा सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक रूप से उन्हें हानि पहुँचाने की कोशिश करते हैं। हमारे वात्सल्य का आधार साधर्म्य नहीं, अपितु समान उपजाति है। 'धर्मी सों गोवच्छ प्रीति सम कर निज धर्म दिपावैं' इस उपदेश को हम ताक पर रख देते हैं। यह महामिथ्यात्व-प्रेरित उपजातिद्वेष-विष हमारी धमनियों में इस हद तक व्याप्त हो गया है कि अब तो हमारी मुनिभक्ति भी उपजाति के आधार पर बँट गई है, हमारे मन्दिर अलग-अलग हो गये हैं, हमारी प्रतिमाएँ अलग-अलग हो गई हैं, हमारे तीर्थ अलग-अलग हो गये हैं। शब्दब्रह्म की हमारी जन्मजन्मान्तरीय साधना पानी को बिलोने और रेत को पेलने के समान निरर्थक सिद्ध हो रही है।

ज्ञानकाण्ड चल रहा है, सम्यग्दर्शन की परिभाषाओं का विश्लेषण किया जा रहा है और हम त्रिमूढ़ताओं में फँस रह हैं। 'भगवती' नाम देकर पद्मावती यक्षिणी की पूजा प्रचलित की जा रही है। मंत्रतंत्र में रत साधुओं की उपासना की जा रही है। इनके जन्मदिन अब पाश्चात्यशैली में मनाये जाने लगे हैं। जैसे पश्चिमी सभ्यता में रंगे विषयभोगी गृहस्थ अपना जन्मदिन केक काटकर मनाते हैं, उसी प्रकार मुनियों के जन्मदिन पर भी केक काटे जाने लगे हैं, अष्टद्रव्य में एक नया पाश्चात्य नैवेद्य शामिल किया जा रहा है। शायद आगे चाकलेट और टाफियों का नम्बर आ जाय। मूढ़भक्ति के अन्धकार में डूबे श्रावक जिनतीर्थ को लज्जित करने में कितनी प्रगति कर रहे हैं!

विद्वानों में भी परस्पर सौमनस्य दृष्टिगोचर नहीं होता। पत्र-पत्रिकाओं में वे एक-दूसरे पर कीचड़ उछालते हुए देखे जाते हैं। उनके संगठन अखण्ड नहीं रह पाते।

इस तरह हम देखते हैं कि ज्ञानकाण्ड भी भावकाण्ड की संगति से वंचित हैं।

व्रतकाण्ड

श्रावकों की धार्मिक प्रवृत्ति में व्रतकाण्ड तीसरे नम्बर पर है। बहुत कम गृहस्थ ऐसे हैं, जिन्होंने विधिवत्, श्रावकव्रत ग्रहण किये हों। प्रतिदिन देवदर्शन और पूजन करनेवाले तथा घर की चक्की के आटे और कुए के पानी का उपयोग करने वाले गृहस्थ अल्पसंख्यक ही हैं। श्रावकप्रतिमाएँ धारण करने वाले तो और भी अल्प हैं। किन्तु कुछ अपवादों को छोड़कर इनमें भी विनय, वात्सल्य, मैत्री, प्रमोद कारुण्य, माध्यस्थ्य आदि भावों के दर्शन दुर्लभ होते हैं। वर्षों से व्रतों का पालन करने वाली, शुद्ध अन्न-जल का सेवन करने वाली माताओं और उनकी बहुओं में इतनी कटुता और असहिष्णुता रहती है कि उनका अधिकांश समय अशान्ति में ही बीतता है। बेला, तेला और रविव्रत करने वाली जिठानी और देवरानी एक-दूसरे को फूटी आँखों नहीं देखतीं। उन्हें शीघ्र ही अपने चूल्हे अलग-अलग करने पड़ते हैं। व्रतधारी पुरुषों का व्यापार या सेवा कार्य में अनैतिक मार्गों का अवलम्बन ज्यों का त्यों चलता रहता है। दहेज की माँग करने में उन्हें जरा भी पाप महसूस नहीं होता। दशलक्षण पर्व में दस दिन तक एकाशन-उपवास करने के बाद भी पुराने वैरों का मैल मन से नहीं धुल पाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और क्षमावाणी पर्व पर वैरी अपने वैरियों से आँखें चुराते रहते हैं अथवा उनका क्षमा माँगना मात्र मायाचार बन कर रह जाता है। कुछ प्रतिमा-धारियों के हृदय में भी विनय, वात्सल्य, मार्दव आदि के अंकुर नहीं फूटते अर्थात् व्रतकाण्ड को भी भावकाण्ड का आशीर्वाद प्राप्त नहीं है।

भावकाण्ड प्राण है, नदारद क्यों?

भावकाण्ड तो कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और व्रतकाण्ड तीनों का प्राण है। विनय, वात्सल्य, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, क्षमा आदि भावों के होने पर ही कर्मकाण्डादि में धर्मत्व का संचार होता है। ये सम्यग्दर्शन के अंगों में गर्भित हैं और सम्यग्दर्शन के बिना कोई भी कर्मकाण्ड या व्रतकाण्ड सम्यक् नहीं होता। विनय, वात्सल्य, क्षमादिभावों की अभिव्यक्ति ही कर्मकाण्डादि का लक्ष्य है और कर्मकाण्डादि-सम्पादन के ये माध्यम भी हैं। विनय-वात्सल्य-क्षमादिभावपूर्वक ही कर्मकाण्डादि का सम्पादन होना चाहिए। ये भाव कर्मकाण्डादि के निश्चय साधन हैं और अष्टद्रव्यादि व्यवहारसाधन। भावकाण्ड कर्मकाण्डादि का आरंभ बिन्दु भी है, केन्द्रबिन्दु भी और अन्त्य बिन्दु भी, क्योंकि यही मोक्ष का निश्चय मार्ग है। **'मेरी भावना'** रचकर स्व. पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार ने यह बात स्पष्ट कर दी है। **'मेरी भावना'** के पाठ से ही हमारा दैनिक कार्य आरंभ होना चाहिए और दैनिक कार्य की समाप्ति पर 'मेरी भावना' का स्मरण किया जाना चाहिए। जब दैनिक कार्य 'मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे' इत्यादि भावों के साथ आरंभ होना जरूरी है, तब पूजा, विधान, स्वाध्याय, आदि का आरंभ तो इन भावों के साथ होना अनिवार्य ही है।

किन्तु कर्मकाण्डीय ग्रन्थों में केवल व्यवहार साधनों और व्यवहारविधियों का ही वर्णन मिलता है, उन्हीं के अनुसरण पर बल दिया जाता है और उन्हीं का ज्ञान कराने के लिये शिक्षण शिविर आयोजित किये जाते हैं। कर्मकाण्ड में विनय, वात्सल्य, क्षमादि भावों की अनिवार्यता का न तो किसी कर्मकाण्डीय ग्रन्थ में निर्देश है, न उन पर प्रतिष्ठाचार्य आदि जोर देते हैं, न ही किसी प्रशिक्षण शिविर में उनका प्रशिक्षण दिया जाता है, न ही उनका उल्लंघन करने पर किसी प्रायश्चित का विधान किया गया है। गोया भावकाण्ड को सर्वत्र उपेक्षित रखा गया है। यही कारण है कि श्रावकों की धार्मिक प्रवृत्तियों में भावकाण्ड नदारद है। और उसके अभाव में अन्य तीनों काण्ड निष्प्राण, नीरस और अनुर्बर बने हुए हैं। भावशून्य क्रियाएँ कैसे प्रतिफलित हो सकती हैं? 'यस्मात्क्रियाः प्रति फलन्ति न भावशून्याः।'

रतनचन्द्र जैन

नमोऽस्तु

मैं न आदमी रख पाया न कुत्ता

प्रो. (डॉ.) सरोज कुमार

घर में कुत्ते न घुसें
इसलिये मेरे पड़ोसी ने
एक आदमी रख छोड़ा।
और घर में आदमी न घुसें
इसलिये दूसरे ने
एक कुत्ता रख छोड़ा!

मैं न आदमी रख पाया
न कुत्ता,
फिर भी मेरे यहाँ
कोई नहीं घुसा!

घुसने वालों ने सोचा होगा-
कि ऐसे के यहाँ भी क्या घुसना
जिसके दरवाजे पर
न आदमी है, न कुत्ता!

'मनोरम' 37, पत्रकार कॉलोनी
इन्दौर-452001 (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीपावली

स्व. पं. सुमेरुचन्द्र जी दिवारकर

कार्तिक कृष्णा अमावस्या के सुप्रभात में पावापुरी के उद्यान से भगवान् महावीर प्रभु ईस्वी सन् 527 वर्ष पूर्व संपूर्ण कर्म-शत्रुओं को जीतकर अनन्त ज्ञान, अनन्त आनंद, अनंत शक्ति आदि अनन्त गुणों को प्राप्त कर मुक्ति धाम को पहुँचे थे। उस आध्यात्मिक स्वतंत्रता की स्मृति में प्रदीप पंक्तियों के प्रकाश द्वारा जगत् भगवान महावीर प्रभु के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ अपनी आत्मा को निर्वाणोन्मुख बनाने का प्रयत्न करता है। हरिवंश पुराण से विदित होता है, कि भगवान महावीर ने सर्वज्ञता की उपलब्धि के पश्चात् भव्यवृन्द को तत्त्वोपदेश दे पावानगरी के मनोहर नामक उद्यानयुक्त वन में पधारकर स्वाति नक्षत्र के उदित होने पर कार्तिक कृष्णा के सुप्रभात की संध्या के समय अघातिया कर्मों का नाशकर निर्वाण प्राप्त किया। उस समय दिव्यात्माओं ने प्रभु की और उनके देह की पूजा की।

उस समय अत्यंत दीप्तिमान जलती हुई प्रदीप पंक्ति के प्रकाश से आकाश तक को प्रकाशित करती हुई पावा नगरी शोभित हुई। सम्राट श्रेणिक (विम्बसार) आदि नरेन्द्रों ने अपनी प्रजा के साथ महान् उत्सव मनाया था। तब से प्रतिवर्ष लोग भगवान् महावीर जिनेन्द्र के निर्वाण की अत्यंत आदर तथा श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं।

आज भी दीपावली का मंगलमय दिवस भगवान् महावीर के निर्वाण की स्मृति को जागृत करता है। समग्र भारत में दीप मालिका की मान्यता भगवान् महावीर के व्यक्तित्व के प्रति राष्ट्र के समादर के परंपरागत भाव को स्पष्ट बताती है।

इतिहास का उज्ज्वल आलोक दीपावली का सम्बन्ध भगवान् महावीर के निर्वाण से स्पष्टतया बताता है। दीपावली का मंगलमय पर्व आत्मीय स्वाधीनता का दिवस है। उस दिन संध्या के समय भगवान् के प्रमुख शिष्य गौतम गणधर को कैवल्य लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी। इससे दिव्यात्माओं के साथ मानवों ने केवल ज्ञान-लक्ष्मी की पूजा की थी। इस तत्त्व को न जानने वाले रुपया पैसा की पूजा करके अपने आपको कृतार्थ मानते हैं। वे यह नहीं सोचते कि द्रव्य की अर्चना से क्या कुछ लाभ हो सकता है? वे यह भूल जाते हैं कि-

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।'

दीपावली के उत्सव पर सभी लोग अपने-अपने घरों को स्वच्छ करते हैं और उन्हें नयनाभिराम बनाते हैं। यथार्थ में वह पर्व आत्मा को राग, द्वेष, दीनता, दुर्बलता, माया, लोभ, क्रोध आदि विकारों से बचा, जीवन को उज्ज्वल प्रकाश तथा सद्गुण-सुरभि-संपन्न बनाने में है। यदि यह दृष्टि जागृत हो जाए तो यह मानव महावीर बनने के प्रकाशपूर्ण पथ पर प्रगति किये बिना न रहे।

दीपावली के दिन से वीरनिर्वाण संवत आरंभ होता है। यह सर्व प्राचीन प्रचलित संवत्सर प्रतीत होता है। मंगलमय महावीर के निर्वाण को अमंगल नाशक मानकर भव्य लोभ अपने व्यापार आदि का कार्य दीपावली से ही प्रारंभ करते हैं।

'जैनशासन' से साभार

दीवाली

मुनि श्री चन्द्रसागर
(आचार्य श्री विद्यासागर के शिष्य)

दीवाली आई
दीवाली गई
दीप जले
आँगन रोशनी
अँधेरे से उजाला
पर कोई
न जला
न जला

दीवाली आई
दीवाली गई
कई बार आई
कई बार गई
आँगन उजयारा
मन अँधयारा
तन दुखयारा
पर ये शकलें
न बदलीं
न बदलीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयांश

वनवासी और चैत्यवासी

स्व. पं. नाथूराम जी प्रेमी

पाँच जैनाभास

देवसेन ने दर्शनसार (वि.सं. 990) में पाँच जैनाभासों की उत्पत्ति का कुछ इतिहास दिया है। उनमें से पहले के दो- श्वेताम्बर और यापनीय - तो हमें छोड़ देने चाहिए, क्योंकि आचार के अतिरिक्त उनके साथ दिगम्बरों का सिद्धान्त भेद भी है। परन्तु शेष तीन द्राविड़, काष्ठा और माथुर संघ के साथ कोई बहुत महत्त्व का सिद्धान्त भेद नहीं मालूम होता। इन तीनों जैनाभासों का बहुत-सा साहित्य उपलब्ध है और दिगम्बर सम्प्रदाय में उसका पठन-पाठन भी बिना किसी भेद-भाव के होता है, परन्तु उसमें ऐसी कोई बात नहीं पाई जाती जिससे उन्हें जैनाभास कहा जाए। मोर के पंखों की पिच्छि के बदले गाय के बालों की पिच्छि रखना या पिच्छि बिल्कुल ही न रखना, खड़े होने के बदले बैठकर भोजन करना अथवा सूखे चनों को प्रासुक मानना या रात्रि भोजन-विरति नाम का छठा अणुव्रत भी मानना, ये सब बातें इतनी संगीन नहीं हैं कि इनके कारण- ये सब जैनाभास ठहरा दिये जाएँ और इनके प्रवर्तकों को पापी, मिथ्याती बतलाया जाए। इसलिये आश्चर्य नहीं, जो ये तीनों चैत्यवासी ही हों और इसी कारण देवसेन ने जो चैत्यवासी नहीं थे, इन्हें जैनाभास बतला दिया हो। द्राविड़ संघ के उत्पादक वज्रनन्दि के विषय में उन्होंने लिखा है कि 'उसने कछार, खेत, वसति (जैनमंदिर) और वाणिज्य से जीविका निर्वाह करते हुए और शीतल जल से स्नान करते हुए प्रचुर पाप का संग्रह किया।[1]

इससे बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि द्राविड़ संघ के साधु वसति या जैन मंदिरों में रहते थे और उन मंदिरों के लिए दान मिली हुई जमीन में खेती - बाड़ी आदि कराते थे। इसके कुछ ऐतिहासिक प्रमाण भी हैं -

1. 'न्यायविनिश्चयविवरण', 'पार्श्वनाथ चरित' आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों के कर्त्ता वादिराज इसी संघ के थे। उनके गुरु मतिसागर की आज्ञा के अनुसार जो दान-पत्र[2] लिखा गया उससे मालूम होता है कि इस संघ के मुनि भूमि आदि का प्रबन्ध करते थे।

2. चल्लग्राम के वयिरेदेव मंदिर में श.सं. 1047 का एक शिलालेख है जिसमें इन्हीं द्राविडसंघीय वादिराज के वंशज श्रीपाल योगीश्वर को होय्सलवंश के विष्णुवर्द्धन पोय्सलदेव ने वसतियों या जैनमंदिरों के जीर्णोद्धार और ऋषियों के आहार-दान के लिए शल्य नामक ग्राम दान दिया[3] अर्थात् उन्होंने जैन-मंदिरों का जीर्णोद्धार भी कराया और आहार-दान का प्रबंध भी किया।

3. लाट-बागड़ संघ काष्ठासंघ की ही एक शाखा है, जो देवसेन के मत से जैनाभास था। दुबकुण्ड (ग्वालियर) के जैनमंदिर में वि.सं. 1145 का एक शिलालेख मिला है।[4] इस संघ के विजयकीर्ति मुनि के उपदेश से दाहड़ आदि धनियों ने उक्त मंदिर बनवाया और कच्छपघात या कछवाहे वंश के राजा विक्रमसिंह ने उसके निष्पादन, पूजन, संस्कार और कालान्तर में टूटे - फूटे की मरम्मत के लिए कुछ जमीन, वापिका के सहित एक बगीचा और मुनिजनों के शरीराभ्यंजन (तैल-मर्दन) के लिए दो कर घटिकाएँ दीं। ये बातें भी स्पष्ट रूप से चैत्यवासियों के आचार को प्रकट करती हैं।

मूलसंघ

पूर्वोक्त जैनाभासों को छोड़कर शेष दिगम्बर सम्प्रदाय को मूलसंघ कहा जाता है। परन्तु हमारा ख्याल है कि यह नामकरण बहुत पुराना नहीं है। अपने से अतिरिक्त दूसरों को अमूल-जिनका कोई मूल आधार नहीं - बदलाने के लिये ही यह नामकरण किया गया होगा और यह तो वह स्वयं ही उद्घोषित कर रहा है कि उस समय उसके प्रतिपक्षी दूसरे दलों का अस्तित्व था।

हमें मूलसंघ का सबसे पहला उल्लेख नोणमंगल के दानपत्र[5] में मिलता है, जो श.सं. 347 (वि. 482) के लगभग का है और विजयकीर्ति के उरनूर के अर्हत्मन्दिर को कोंगुणिवर्मा महाराज ने दिया है। इसके बाद दूसरा उल्लेख आल्तम (कोल्हापुर) में मिले हुए श.सं. 411 (वि.सं. 546) के दानपत्र में मिलता है, जिसमें मूलसंघ का कोपल आम्नाय के सिद्धनन्दि मुनि को अलक्तक नगर के जैनमंदिर के लिए कुछ गाँव दान किये गये हैं। सिद्धनन्दि के शिष्य का नाम चिकाचार्य था, जिनके कि नागदेव, जिननन्दि आदि 500 शिष्य थे और दान देने वाले पुलकेशी प्रथम (चालुक्य) के सामन्त सामियार थे।[6]

परन्तु यदि यह बात मान ली जाय कि द्राविड़ संघादि को चैत्यवासी होने के कारण जैनाभास बतलाया गया होगा, तो प्रश्न होता है कि देवसेन का दर्शनसार वि.सं. 990 की रचना है, इसलिए जिस शिथिलाचार के कारण उन्होंने द्राविड़ संघ, काष्ठ संघ आदि को जैनाभास बतलाया है, वही शिथिलाचार मूलसंघी मुनियों में भी तो था, क्योंकि विक्रम की पाँचवीं छठी सदी तक के ऐसे अनेक लेख मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि वे भी मंदिरों की मरम्मत आदि के निमित्त गाँव-जमीन आदि का दान लेने लगे थे। तब उन्हें जैनाभास क्यों नहीं बतलाया?

इसका समाधान इस तरह हो सकता है कि देवसेन ने दर्शनसार में जो गाथाएँ दी हैं, वे स्वयं उनकी नहीं, पूर्वाचार्यों की बनाई हुई हैं[7] और चूँकि पूर्वाचार्य स्वयं वनवासी थे, इसलिये उनकी दृष्टि में द्राविड़ संघादि के साधु जैनाभास होने ही चाहिए।

पुराने और नये चैत्यवासी

गरज यह कि द्राविड़ संघ के स्थापक वज्रनन्दि आदि तो पुराने चैत्यवासी हैं, जिन्हें पहले ही जैनाभास मान लिया गया था और मूलसंघी उनके बाद के नये चैत्यवासी हैं, जिन्हें देवसेन ने तो नहीं, परन्तु उनके बहुत पीछे के तेरहपंथ के प्रवर्तकों ने जैनाभास बतलाया।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जिस अर्थ में सुविहित या विधि-मार्ग का प्रयोग होता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगभग उसी अर्थ में पहले दिगम्बर सम्प्रदाय में मूलसंघ का उपयोग किया जाता होगा, किन्तु आगे चलकर यह संज्ञा रूढ़ हो गई, अपने मूल अर्थ-आगमोक्त चर्या को बतलाने वाली नहीं रही और इसलिए जब मूलसंघी भी शिथिल होकर चैत्यवासी मठपति बन गये तब भी यह उनके पीछे लगी रही। यहाँ तक कि खूब ठाठवाट से रहने वाले भट्टारक भी इसे पदवी के रूप में धारण किये रहे।

इस तरह जिन्होंने पहले द्राविड़ संघादि को जैनाभास कहा था, वे मूलसंघी भी आगे चलकर जैनाभास बन गये। इसके एक नहीं, बीसों प्रमाण मिले हैं जिनमें से थोड़े से ये हैं-

1. मर्करा का दान-पत्र प्रसिद्ध है। उसमें श.सं. 388 (वि. 523) में महाराजा अविनीत द्वारा कुन्दकुन्दान्वय के चन्द्रनन्दि भट्टारक को जैन मंदिर के लिए एक गाँव दान किये जाने का उल्लेख है।

2. राजाधिराज विजयादित्य ने पूज्यपाद के शिष्य उदयदेव को 'शंख-जिनेन्द्र' मन्दिर के लिए श.सं. 622 में कर्दम नाम का गाँव दान दिया।[8]

3. राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय के सामन्त अरिकेसरी ने श.सं. 888 में अपने पिता बद्दिग के बनवाये शुभधाम जिनालय की मरम्मत और चूने की कलई कराने तथा पूजोपहार चढ़ाने के लिए सोमदेव (यशस्तिलक के कर्त्ता) को बनिकटुपुलु नाम का गाँव दान में दिया।[9]

इसके बाद के तो सैकड़ों दानपत्र हैं जिनमें मूलसंघी और कुन्दकुन्दान्वय के मुनियों को गाँव और भूमियाँ दान की गई हैं। श्रवणबेलगोल का जैन शिलालेख संग्रह तो ऐसे दानों से भरा हुआ है। नं. 80 के श.सं. 1080 के शिलालेख के अनुसार महाप्रधान हुल्लमय्य ने होय्सल-नरेश से सवणेरु गाँव इनाम में पाकर उसे गोम्मटस्वामी की अष्टविधपूजा और ऋषिमुनियों के आहार[10] के हेतु अर्पण कर दिया। नं. 90 के श.सं. 1100 के लेख में भी पूजन और मुनियों के आहार के लिए नयकीर्ति सिद्धान्तचक्रवर्ती को दान देने का उल्लेख है। 40 नं. के लेख से मालूम होता है कि हुल्लप मन्त्री ने अपने गुरु उन देवेन्द्रकीर्ति पंडित देव की निषिद्या बनवाई जिन्होंने रूपनारायण मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था और एक दान-शाला का भी निर्माण कराया था।

इन सब लेखों से स्पष्ट है कि हमारे इन बड़े-बड़े मुनियों के अधिकार में भी गाँव बगीचे आदि थे। वे मंदिरों का जीर्णोद्धार कराते थे, दूसरे मुनियों को आहार देते थे और दानशालायें भी बनवाते थे। गरज यह कि उनका रूप पूरी तरह से मठपतियों जैसा था ओर इसका पता विक्रम की छठी शताब्दि के बाद के लेखों से लगने लगता है।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि मठवासियों के समय में शुद्धाचारी और तपस्वी दिगम्बर मुनियों का अभाव हो गया होगा अथवा सारा जनसमुदाय उन्हीं का अनुयायी बन गया होगा। शुद्ध शास्त्रोक्त आचार के पालने वाले और उनकी उपासना करने वाले भी रहे होंगे, फिर भी वे विरल ही होंगे। जैसा कि पं. आशाधर ने कहा है - 'अफसोस है, सच्चे उपदेशक मुनि जुगनू के समान कहीं-कहीं ही दिखलाई देते हैं - 'खद्योतवत् सुदेष्टारो हा द्योतन्ते क्वचित् क्वचित्।'

संदर्भ

1. दर्शनसार, गाथा 27
2. जै.सि.भा. भाग, किरण 2-3
3. जैन शिलालेखसंग्रह का 493 नं. का शिलालेख।
4. एपिग्राफिआ इण्डिका जिल्द 2, पृष्ठ 237-40
5. जैन शिलालेख संग्रह द्वि.भा.पृ.60-61
6. इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द 7, पृ. 209-17
7. पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ।
   सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण॥
   रइओ दंसणसारो...
8. म.म. ओझाकृत सोलंकियो का इतिहास।
9. 'सोमदेव का नीतिवाक्यामृत' शीर्षक लेख पृ 177-96
10. इन्द्रनन्दिकृत नीतिसार से भी जो केवल मुनियों के लिये बनाया गया है- (अनगारान्प्रवक्ष्यामि नीतिसार-समुच्चयम्), इन बातों की पुष्टि होती है कि मुनि लोग मंदिरों का जीर्णोद्धार करते थे, आहार-दान देते थे और थोड़ा बहुत धन भी रखते थे।

महावीर निर्वाण महोत्सव

अनूपचन्द न्यायतीर्थ

महावीर निर्वाण महोत्सव
हर्ष पूर्वक अबकी बार
ऐसा मने मिटे अँधियारा
ज्ञान ज्योति का हो संचार

महावीर निर्वाण हो गया
कार्तिक मावस प्रात:काल
संध्या केवल ज्ञान ज्योति से
ज्योतित गौतम हुए निहाल

देवों ने आ दीप जलाये
घर-घर में था मंगलाचार
वातावरण शांति का अद्भुत
किया सभी ने जयजयकार।

मना रहा है विश्व समूचा
पूरा वर्ष 'अहिंसा वर्ष'
रोगमरी दुर्भिक्ष नहीं हो
युद्ध टलें होवे उत्कर्ष।

महावीर निर्वाण महोत्सव
पच्चीसौ ढाईस महान
देता है सन्देश सभी को
दूर करो जग का अज्ञान।

दीवाली का महापर्व यह
जगहितकारी सुखदातार
मन की कीट कालिमा धोकर
सिखलाता है विनय अपार।

जगमग जगमग ज्योति लाकर
करता है निर्भय संसार
धरती को धनधान्य पूर्णकर
मानवता का करे प्रचार।

जीओ और जीने दो सबको
जीने का सबको अधिकार
नहीं सताओ किसी जीव को
करते रहो सदा उपकार

महावीर निर्वाण महोत्सव
दीवाली का सुन्दर मेल
उग्रवाद आतंकवाद का
मिटा सकेगा सारा खेल।

769, गोदीकों का रास्ता,
किशन पोल बाजार, जयपुर - 302003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म और हवन

स्व. पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया

विद्वान् लेखक का प्रस्तुत शोधपूर्ण आलेख विचारणीय है। यह 20 नवम्बर 1964 के 'जैन सन्देश शोधांक' में प्रकाशित हो चुका है।

धर्म के दो भेद हैं- मुनि धर्म और श्रावक धर्म। हवन करना यह श्रावकों की क्रिया है, मुनियों की नहीं। परन्तु श्रावकाचार ग्रन्थों- रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, चारित्रसार, वसुनन्दि श्रावकाचार, अमितगति श्रावकाचार आदि में यहाँ तक कि पं. आशाधर के सागारधर्मामृत में भी श्रावकों के लिए हवन करने का विधान कहीं नहीं बताया गया है। इन ग्रन्थों में पूजा के प्रकरण में भी हवन का कोई उल्लेख नहीं है। अगर हवन करना श्रावक का धर्म होता या जिनपूजाविधि का कोई अंग विशेष होता तो उसका कथन श्रावकाचार के ग्रन्थों में अवश्य आता।

किसी लौकिक कार्य की सिद्धि के लिये कोई मन्त्रविद्या साधी जाती है, उसमें भिन्न-भिन्न विद्याओं के लिए भिन्न-भिन्न पदार्थों का हवन करना मन्त्र शास्त्रों में बताया है, परन्तु धार्मिक अनुष्ठान में जपे जाने वाले मन्त्रों के साथ हवन का कोई नियम नहीं है। ज्ञानार्णव में बहुत से उत्तमोत्तम मन्त्रों के जाप्य करने का वर्णन है, परन्तु वहाँ उनकी आहुतियाँ देने का कोई कथन नहीं है। शास्त्रों में पदस्थध्यान के वर्णन में परमेष्ठीवाचक मन्त्रों का जाप्य तो बताया है पर उन मन्त्रों से हवन करना नहीं बताया है। जप-तप ध्यान से तो बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ होती हैं इसलिये जैन शास्त्रों में जहाँ तहाँ इनकी तो बहुत महिमा लिखी है, हवन की नहीं। श्री समन्तभद्राचार्य ने भी 'दयादमत्यागमसमाधिनिष्ठ' इत्यादि कारिका में जैन मत को अद्वितीयमत इसी कारण से बताया है कि उसमें दया, इन्द्रियसंयम, त्याग और ध्यान की मुख्यता है।

बहुत पुराने जमाने में घृत, मेवा, मिष्टान्न से हवन नहीं किया जाता था, क्योंकि ये मानव के पौष्टिक खाद्य हैं, किन्तु उस धान्य से हवन किया जाता था जो तीन वर्ष का पुराना हो जाने से न तो वह मानव के काम का रहता था और न कृषि के योग्य, क्योंकि खेत में बोने से वह उग नहीं सकता था। ऐसे निकम्मे, फालतू धान्य को इस काम में लिया जाता था। उस वक्त की वह रस्म भी वैदिकमत की थी, न कि जैनमत की। क्योंकि 'अजैर्यष्टव्यं' इस वाक्य को लेकर नारद और पर्वत के बीच जो विवाद हुआ था उसमें नारद कहता था कि तीन वर्ष के पुराने धान्य जो बोने पर उगे नहीं वे अज कहलाते हैं, उन अजों से हवन करना ऐसी वैदिकमत की मान्यता है। इसके विरुद्ध पर्वत का कहना था कि अज कहिये बकरों से हवन करना ऐसी मान्यता वैदिकमत की है। यहाँ दोनों ही ने वैदिकमत की मान्यता पर विवाद किया था। जैनमत का तो यहाँ कोई प्रसंग ही नहीं है। जैनधर्म तो दयाप्रधान धर्म है, ऐसा आबाल-गोपाल प्रसिद्ध है, तब उसमें बकरों से होम करने की बात कोई कहेगा ही क्यों और उसकी यह बात चलेगी भी कैसे? इसके लिये राजा बसु की साक्षी की भी कोई जरूरत नहीं थी।

तीन वर्ष के पुराने धान्य से हवन करने की रीति जैनमत की होती तो आचार्य जिनसेन स्वामी आदिपुराण में गर्भाधानादि संस्कारों में हवन के लिए तीन वर्ष का पुराना धान्य बताते। इसलिये पर्वत और नारद दोनों ही का विवाद वैदिकमत की मान्यता पर ही था। दोनों के गुरु क्षीरकदंब भी अजैन ब्राह्मण ही थे। पद्मपुराण और हरिवंशपुराण में लिखा है कि वे शिष्यों को आरण्यक ग्रन्थ पढ़ाते थे। आरण्यक यह वैदिकमत का ग्रन्थ है। हाँ, यह हो सकता है कि जैन दीक्षा लेकर क्षीरकदंब जैन हो गये हों। महाभारत शान्तिपर्व मोक्षाधिकार अ. 334 में बताया है कि -

'एक बार ऋषियों और देवताओं के बीच अज शब्द पर विवाद चला। ऋषियों का पक्ष था धान्य से यज्ञ करने का और देवों का पक्ष था पशु बलि से यज्ञ करने का। राजा बसु से निर्णय माँगा गया, उसने पक्षपात से अज का अर्थ बकरा बताया जिससे पशुबलि की प्रथा चली। ऋषिशाप से वसु नरक गया।'

शान्तिपर्व 269 श्लोक 25, 26 तथा पर्व 271 श्लोक 1-13 में बताया है कि 'यज्ञों में प्रारंभ में हिंसा नहीं होती थी। क्योंकि मनु ने अहिंसा को ही परमधर्म कहा है। सच्चा ब्राह्मण तो वह यज्ञ करता है जिसमें किसी भी प्राणी की हिंसा न हो।'

इससे भी यही सिद्ध होता है कि 'अजैर्यष्टव्यं' का विवाद वैदिकों में ही आपस का था।

ब्राह्मण मत में अग्नि को देवताओं का मुख माना है इसलिये उनके यहाँ अग्नि में डाली वस्तु देवताओं को मिल जाती है। इसी माफिक उत्तर-पुराण पर्व 67 श्लोक 329 से 331 में कहा है कि 'तीन वर्ष के पुराने धान्य की बनी वस्तुओं से अग्निरूप मुख में देवता की पूजा करना- आहुति देना यज्ञ कहलाता है।' ऐसा अर्थ 'अजैर्होतव्यं' का नारद ने करके पर्वत को सुनाया था। इससे भी त्रिवर्षे धान्य से हवन करने का विधान वैदिक मत का ही जाहिर होता है। क्योंकि अग्नि को देवों का मुख मानना, ऐसा जैनों का मत नहीं है। इस प्रकार जैनधर्म में तो तीन वर्ष के पुराने धान्य से भी हवन करने का विधान नहीं है।

पद्मपुराण पर्व 11 श्लोक 248 में कहा है कि ''ज्ञानाग्नि, दर्शनाग्नि और जठराग्नि ये तीन अग्नियाँ इस शरीर में ही हैं। विद्वानों को उन्हीं में दक्षिणाग्नि आदि तीनों अग्नियों का संकल्प करना चाहिए।'' इस कथन से सिद्ध होता है कि रविषेण के वक्त तक जैनधर्म में दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय इन तीन अग्नियों की कल्पना तीर्थकर-गणधर-सामान्य केवलियों के दग्ध शरीरों की अग्नियों में नहीं हुई थी।

पद्मपुराण के इसी 11वें पर्व के श्लोक 241 से 244 में कहा है- ''प्रथम तो यज्ञ की कल्पना ही निरर्थक है। दूसरे यदि कल्पना करनी ही है तो विद्वानों को हिंसायज्ञ की कल्पना नहीं करनी चाहिए। उन्हें धर्मयज्ञ ही करना चाहिए। वह इस तरह की आत्मा यजमान है, शरीर वेदी है, सन्तोष साकल्य है, त्याग होम है, मस्तक के केश कुशा हैं, प्राणियों की रक्षा दक्षिणा है, शुक्लध्यान प्राणायाम है, सिद्धिपद की प्राप्ति फल है, सत्य बोलना स्तम्भ है, तप अग्नि है, चंचलमन पशु है और इन्द्रियाँ समिधायें हैं। यही धर्मयज्ञ कहलाता है।'

पद्मपुराण के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि रविषेण के वक्त तक भी जैनधर्म में अग्नि में आहुतियाँ देने रूप यज्ञ की कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्ति नहीं थी। उस वक्त वैदिक मत में यज्ञ की जैसी प्रवृत्ति थी उसे भी उन्होंने आध्यात्मिक रूपक में ढाल कर उस तरह के यज्ञ करने का आदेश दिया है।

इसी तरह वैदिकों के यहाँ देवाराधना में जिस प्रकार यज्ञ, स्वाहा, आहुति शब्द प्रयुक्त हुए हैं उसी प्रकार हमारे यहाँ जैनधर्म में भी ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु इनका अर्थ हमारे यहाँ वैदिकों से जुदा है। जल गंध अक्षतादि अष्टद्रव्यों से भगवान् की पूजा करने को हमारे यहाँ यज्ञ कहा है।

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः।
आलंबनानि विविधान्यवलंब्य वल्गन्,
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम्।।

- नित्यनियम पूजा

पूजन के वक्त इष्टदेव के आगे स्वाहा शब्द बोलकर हमारे यहाँ द्रव्य अर्पण किया जाता है और पूजा के अन्त में जो अर्घ दिया जाता है वह पूर्णाहुति कहलाती है। इस पूर्णाहुति शब्द का प्रयोग पं. आशाधर ने स्वरचित प्रतिष्ठापाठ में अनेक जगह किया है। इससे फलितार्थ यही निकलता है कि जैनमत में भी यज्ञ करना बताया है परन्तु वह ब्राह्मणों की तरह अग्नि में आहुतियाँ देने रूप नहीं बताया है, किन्तु पूज्य के आगे द्रव्य अर्पण करने रूप बताया है।

यशस्तिलकचम्पू आश्वास 4 पृ.105 पर दिगम्बर धर्म पर ऐसे आक्षेप का उल्लेख किया है -

न तर्पणं देवपितृद्विजानां,
स्नानस्य होमस्य न चास्ति वार्ता।
श्रुतेः स्मृतेर्बाह्यातरे च धीस्ते
धर्मे कथं पुत्र दिगंबराणाम्।

अर्थ- जिस धर्म में देव-पितृ-द्विजों का तर्पण नहीं है, न स्नान (जैन साधु स्नान नहीं करते) और न होम की जहाँ वार्ता है और जो श्रुति-स्मृति से अत्यंत बाह्य है ऐसे दिगम्बरों के धर्म में हे पुत्र, तेरी बुद्धि क्यों है?

इस आक्षेप से क्या यह सिद्ध नहीं होता है कि प्राचीन काल में दिगम्बर मत में कतई हवन की प्रथा नहीं थी? साधारण तौर पर भी सोचा जाये कि किसी का पूजा सत्कार करने में जो चीजें उसे भेट में देनी हैं उन चीजों को उसे न देकर उसके आगे अग्नि में जलाकर उन्हें भस्म कर देना क्या कोई बुद्धिमानी है और ऐसा भी क्या कोई पूजा का तरीका है?

वैदिक मत में 'अग्निमुखा वै देवाः' ऐसा श्रुति वाक्य है। जिसका अर्थ होता है 'देवगण अग्निमुख वाले होते हैं।' यानी जो चीजें अग्नि में हवन की जाती हैं वे देवताओं को पहुँच जाती हैं। ऐसा सिद्धान्त वैदिक मत का है अतः वैदिक लोग इस सिद्धान्त के माफिक अग्नि में हवन करते हैं। किन्तु जैनों का तो ऐसा सिद्धान्त नहीं है, फिर वे क्या समझ कर अग्नि में हवन करते हैं, जैनमत में तो देवों को अमृतभोजी लिखा है उनको हमारे खाद्यपदार्थों से प्रयोजन ही क्या है? यही बात सोमदेव ने भी हवन का निराकरण करते हुए यशस्तिलक उत्तरखंड पृ. 109 में इन शब्दों में लिखी है-

'सुधांधसः स्वर्गसुखोचितांगाः
खादंति किं वह्निगतं निलिम्पाः।'

अर्थ- स्वर्गीय सुखों में पलने वाले अमृतभोजी देवता क्या अग्नि में प्राप्त हुए खाद्य पदार्थों को खाते हैं? नहीं खाते हैं।

लौकिक कार्यों के साधनार्थ मन्त्रशास्त्रों में वश्य, आकर्षण, स्तंभन, मारण, उच्चाटन आदि कर्म लिखे हैं, जिनमें साधक को मन्त्र का जाप्य करना पड़ता है और हवन भी करना पड़ता है। हवन अलग-अलग मन्त्रों में अलग-अलग पदार्थों का होता है। विद्यानुशासन में लिखा है कि -

'कनेर के फूलों के हवन से स्त्रियों का वशीकरण होता है। सुपारी के फल-पत्तों के होम से राजा लोग वश में होते हैं। घृत मिले आम्र फलों के होम से विद्याधरी वश में होती है। घृत सहित तिलों के होम से धनधान की वृद्धि होती है। इत्यादि' और लिखा है - होम से उस मंत्र का अधिष्ठाता देवता तृप्त होकर साधक के आधीन हो जाता है-

जपादविकलो मंत्रः स्वशक्तिं लभते पराम्।
होमार्चनादिभिस्तस्य तृप्ता स्यादधिदेवता।।

अर्थ - अविकल जप करने से मंत्र में उत्कृष्ट शक्ति पैदा होती है और हवनपूजादि से उस मंत्र का अधिष्ठाता देवता तृप्त हो जाता है।

ये सब बातें मंत्रशास्त्रों से संबंध रखती हैं। इनका धार्मिक पूजापाठों के साथ कोई सरोकार नहीं। भगवान् पंचपरमेष्ठी की आराधनारूप मंत्रों में मंत्रों के अधिष्ठाता देव पंचपरमेष्ठी हैं, वे वीतरागी हैं। उनका होम से तृप्त होने का और साधक के आधीन होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। अतः धार्मिक अनुष्ठान में हवन की कोई आवश्यकता नहीं है। सोमदेव ने भी यशस्तिलकचंपू उत्तरखंड पृष्ठ-109 में 'षट्कर्मकार्यार्थं' इत्यादि श्लोक में स्तंभन, मोहन आदि षट्कर्म के कार्य में ही होम को माना है, धर्मकार्यों के लिये नहीं। इससे यही सिद्ध होता है कि हवन का संबंध सिर्फ लौकिक मंत्र विद्या के साथ है। हवन की क्या, मंत्र विद्या के साथ तो दिशा, काल, मुद्रा, आसन, पल्लव, माला आदि अन्य भी कई बातों का विचार रखना पड़ता है। किसी-किसी मंत्रसाधना में तो घृणित वस्तुओं का उपयोग भी बताया है। इसके लिये देखिये 'भैरव पद्मावतीकल्प' नामक मंत्र ग्रन्थ।

उक्त स्तंभन, मोहन आदि षट्कर्मों के साथ शान्ति, पुष्टि मिलाने से 8 कर्म भी मंत्रशास्त्रों में माने गये हैं। इस शांतिकर्म के लिये भी दिशा, काल, मुद्रा आदि के नियम लिखे हैं। जैसे लिखा है कि - मुख पश्चिम में रहे, समय अर्द्धरात्रि का हो, पद्मासन, ज्ञानमुद्रा, स्फटिक की माला, स्वाहा पल्लव, आसन सफेद, मध्यमांगुली से माला फेरना, अग्निकुण्ड चौकोर, होम की समिधा 9 अंगुल की हो। यह मांत्रिक, शांतिकर्म है। इस मान्त्रिक शांतिकर्म से जुदा एक धार्मिक शान्तिकर्म भी होता है जिसमें पंचपरमेष्ठी सम्बन्धी मंडल पूजा विधान, जाप्य, स्तुति, (सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ) अभिषेकादि रूप धार्मिक अनुष्ठान किया जाता है। इस धार्मिक शांतिकर्म में दिशा, काल, मुद्रा, आसन आदि नियमों का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। न इसमें होम करने की जरूरत है। भगवज्जिनसेन ने आदि पुराण में ऐसे ही शांतिकर्म का उल्लेख किया है। जिस वक्त भरत चक्री को अशुभ स्वप्न आये थे तो उनके दोष निवारणार्थ उन्होंने शांतिकर्म किया था। उसका कथन करते हुए आदिपुराण में लिखा है कि-

शांतिक्रियामतश्चक्रे दुःस्वप्नानिष्टशांतये।
जिनाभिषेकसत्पात्रदानाद्यैः पुण्यचेष्टितैः।।

अर्थ - जिनेन्द्र का अभिषेक, सत्पात्रों को दान इत्यादि पुण्यकार्यों से भरत ने दुःस्वप्नों और अरिष्ट (अशुभसूचक उत्पात) की शान्ति के लिये शान्तिकर्म किया।

जो लोग शान्तिकर्म में हवन को मुख्य स्थान देते हैं। उन्हें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिपुराण के इस कथन पर ध्यान देना चाहिए। अगर शांतिकर्म में हवन एक मुख्य चीज होती तो आचार्य जिनसेन उसका नाम दिये बिना नहीं रहते। उन्होंने तो पूजा, दान को प्रधानता दी है। अर्हद्भक्ति और त्याग, यही तो जैनधर्म के प्राण हैं और सच्ची व स्थायी शांति भी इन्हीं से मिल सकती है। साथ ही बड़े-बड़े विघ्नों और उपद्रवों के मिटाने का भी ये ही अमोघ उपाय है। पं. आशाधर जी ने भी अपने प्रतिष्ठा पाठ में इसी प्रकार का शान्तिकर्म लिखा है। लिखते हैं कि -

'अष्ट दल के कमल के मण्डल में लघुशान्तिकर्म की विधि और 81 कोठों के मण्डल में बृहत् शान्तिकर्म की विधि करनी चाहिए। ध्यान के माफिक ही उसका फल समझना चाहिए। विघ्नों की शान्ति के लिये दोनों शान्तिकर्म यथायोग्य, यथाविधि करने चाहिए।' इन दोनों शान्तिकर्मों में उन्होंने सिर्फ पञ्चपरमेष्ठी व जयादि देवी-देवों की आराधना पूजा (जैसी कि उनकी आम्नाय थी) और भगवान् का अभिषेक करना बताया है। हवन करने का कथन नहीं किया है। सिद्धचक्र मण्डल-विधान भी इसी तरह का शान्तिकर्म है। इसमें अनेक कवियों की संस्कृत रचनाओं का संग्रह है। इसका संकलन भट्टारक शुभचन्द्र ने किया है। इसमें कहीं भी हवन करने का नाम निशान नहीं है। तथापि वर्तमान में हर अष्टाह्निका में जैन समाज में कई जगह इस पुस्तक से सिद्धचक्र मण्डल विधान किया जाता है। उसमें हजारों की सामग्री अग्नि में फूँक दी जाती है। इसे हम उत्सूत्रप्रवृत्ति ही कह सकते हैं।

यहाँ तक हमने इस लेख में शास्त्राधार से यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि जैनधर्म में धार्मिक अनुष्ठान करने के लिये हवन करने का कहीं कोई विधान नहीं है। अब हम आदिपुराण में उल्लखित हवन पर विचार करते हैं -

एक वक्त ऐसा गुजरा था कि हमारे इस देश में ब्राह्मण धर्म का प्राबल्य था, तब हवन आदि क्रिया-कांडों का प्रचलन जोर-शोर पर था। उस वक्त जिनके हवनादि पूर्वक गर्भाधानादि संस्कार होते थे वे आर्य कहलाते थे और उच्च श्रेणी के माने जाते थे। ऐसी परिस्थिति में जैनधर्म की रक्षा और उसकी प्रतिष्ठा रखने के लिये हमारे आचार्य जिनसेन को भी आधानादि संस्कारों और उनके सम्पादनार्थ हवनादि क्रिया-काण्डों की सृष्टि करनी पड़ी है। जिसका वर्णन आदिपुराण में लिखा मिलता है। उस वर्णन को गम्भीरता से अध्ययन करने पर ऐसा प्रतिभासित होने लगता है कि जब जिनसेन स्वामी को ऐसा नजर आया कि ब्राह्मण धर्म का असर जैनधर्म के मूल आचार-विचारों पर तो नहीं पड़ रहा है। किन्तु जैनी लोग अपने पड़ौसी वैदिक मतवालों की देखा-देखी विवाह, जातकर्म, शिलान्यास, नूतन गृह प्रवेश आदि लौकिक कार्यों को ब्राह्मण रीति से कराने लग गये हैं। यह भी चीज जैनधर्म के लिये अवज्ञा की है। इसके लिए भी जैन जनता क्यों परमुखापेक्षी रहे? और क्यों वैदिक मत का सम्पर्क करे? यही सब सोचकर आचार्यश्री ने लौकिक क्रियाकाण्डों का जो प्रवाह चल पड़ा था उसे रोकना मुश्किल समझ कर उसके विधिविधानों में वैदिक आम्नाय के अनुसार देव, गुरु, अग्नि की साक्षी का उपयोग किया जा रहा था उनकी जगह उन्होंने जैन आम्नाय के अनुरूप देव, गुरु, अग्नि के समक्ष में विधि विधान किये जाने की योजना चालू की। तदर्थ उन्होंने पीठिकादि हवन मन्त्रों, गार्हपत्यादि अग्नियों, तीर्थंकरादि अग्निकुण्डों और गर्भाधानादि संस्कारों का प्रतिपादन किया है। साथ ही इन कामों के कराने वाले ब्राह्मण भी चाहिये तो इसके लिये उन्होंने जैन ब्राह्मण बनाने के उपाय भी बताये हैं। उन जैन ब्राह्मणों को खास तौर से हवनादि करने का आदेश देते हुए आदिपुराण पर्व 40 में लिखा है कि -

"तीनों प्रकार की अग्नियों में मन्त्रों के द्वारा पूजा करने वाला द्विजोत्तम कहलाता है और जिसके घर इस प्रकार की पूजा नित्य होती रहती है वह अग्निहोत्री कहलाता है। घर में बडे यत्न के साथ इन तीनों अग्नियों की रक्षा करनी चाहिये। जिनका कोई संस्कार नहीं हुआ है, ऐसे अन्य लोगों को कभी नहीं देनी चाहिये। ब्राह्मणों को व्यवहारनय की अपेक्षा ही अग्नि की पूज्यता इष्ट है। इसलिये जैन ब्राह्मणों को भी आज यह व्यवहारनय उपयोग में लाना चाहिये।"

आदिपुराण के इन सब कथनों से साफ तौर पर यही प्रकट होता है कि श्री जिनसेनाचार्य ने दो जगह हवन करना बताया है। एक तो गर्भाधान-विवाह आदि लौकिक कार्यों में और दूसरे जैन ब्राह्मणत्व के लिये। इनके सिवा जिनालय में मण्डल पूजा विधान आदि अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में हवन किये जाने का अभिप्राय जिनसेन स्वामी का ज्ञात नहीं होता है। और यह अग्निहवन भी गृहस्थ के घर पर ही होना चाहिये, न कि जिन मन्दिर में। विवाह में तो आमतौर पर हवन घर पर होता ही है और ब्राह्मणों के लिये स्वयं आचार्य श्री ने स्पष्टतया घर पर हवन करने को कहा ही है। अन्य गर्भाधानादि संस्कार भी लौकिक होने से उनका हवन भी घर पर ही होना योग्य है। रही मूर्ति प्रतिष्ठा और वेदी प्रतिष्ठा में हवन की बात, सो लौकिक में नये घर में प्रवेश करते समय हवन किया जाता है। उसी की देखा-देखी नूतन मंदिर में श्री जी को पधराते वक्त भी हवन की प्रथा चल पड़ी है, इससे इसकी गणना भी लौकिक विधान में ही जायेगी। इसे भी करना ही है तो संक्षिप्त रूप से कर लेना चाहिये। शान्तिमन्त्र का जितनी संख्या में जाप्य हुआ है उसके दसवें हिस्से की आहुतियाँ देना ऐसा यहाँ कोई नियम नहीं है। ऐसा नियम तो किसी मन्त्र विद्या के साधनों में कहा गया है।

हवन यह जैन धर्म की मूल संस्कृति नहीं है। जैन धर्म की मूल चीज है अन्तरंग में राग-द्वेषादि कषायों की विजय और बाह्य में जीवदया का पालन। ये दोनों ही हवन में घटित नहीं होते हैं। हवन से अग्निकायिक जीवों की विराधना होती है। दूर-दूर तक फैलने वाली अग्नि की गरम-गरम धुएँ से वायुकाया आदि जीवों का विघात एवं मक्खी-मच्छर आदि उड़ने वाले छोटे-छोटे त्रस जीवों को बाधा आदि तो प्रत्यक्ष ही दिखती है। साथ ही उसके काले धुएँ से मंदिर की सफेद दीवारों के सुन्दर चित्रों, छत्र-चामरों और बहुमूल्य चन्दोवों की भी खासी मिट्टी पलीद हुये बिना नहीं रहती है। इससे कभी-कभी आग लगने की भी संभावना रहती है। इस प्रकार हवन से सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं दिखता है। अहिंसामय जैनधर्म में यह निरर्थक सावद्य क्रिया कैसे पनप रही है? आज के जमाने में धृत, मेवा, मिष्टान्न फलादि पदार्थ वैसे ही मँहगाई की पराकाष्ठा तक पहुँच कर जनसाधारण के लिये अत्यन्त दुर्लभ हो गये हैं। उनको अग्नि में जला कर धर्म मानना इससे बढ़कर अन्य क्या अज्ञानता हो सकती है? सिद्धचक्रादि विधानों में हजारों रुपयों की सामग्री जला कर खाक की जाती है। अगर ये ही रुपये दीन-अनाथों के भी काम में लगाये जायें तो कितना पुण्य हो। यह भी तो सोचना चाहिये कि अग्नि में घृतादि जलाने के साथ धर्म का सम्बन्ध कैसे है? अविचारपूर्ण क्रियाओं का कोई फल मिलने वाला नहीं है। धर्म का असली तत्त्व छिपा जा रहा है और थोथे क्रियाकाण्डों का जोर बढ़ता जा रहा है। विवेकी विद्वान मन में सब कुछ जानते हुए भी अल्पज्ञ लोगों की रुख के विरुद्ध कदम उठाने का साहस नहीं कर रहे, यह बड़े ही परिताप का विषय है।

'जैन निबन्ध रत्नावली'
(प्रथमभाग) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वांक से आगे

जैन संस्कृति और साहित्य के विकास में कर्नाटक का योगदान

प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन

बीसवीं सदी को भी कम सार्थक नहीं बनाया है कर्नाटक ने। पिछले कुछ सदियों से दिगम्बर जैन मुनि-परम्परा अनेक अज्ञात दुखद कारणों से लगभग समाप्त प्राय थी, किन्तु धन्य हैं वे पूज्य आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज, जिन्होंने अनेक प्रतिकूलताओं के मध्य भी श्रमणोचित आध्यात्मिक निर्भीकता तथा कठोर दिगम्बर-चर्या का विधिवत् पालन कर नये प्रेरक आदर्श प्रस्तुत किये। अनेक असामाजिक तत्त्वों द्वारा किये गये भीषण उपसर्गों को भी उन्होंने धैर्यपूर्वक सहा, फिर भी, शास्त्रविहित मार्ग से वे कभी भी विचलित न हुए और दिगम्बर जैन साधुओं का एक संघ भी तैयार कर दिया, जो वर्तमान में वृद्धिंगत है। षट्खण्डागम साहित्य के प्रकाशन में आने वाली अनेक विघ्न बाधाओं को उन्होंने दूर किया और आज उनकी कृपापूर्ण दृष्टि से उक्त समग्र साहित्य प्रकाशित होकर घर-घर में सुशोभित है।

शेडवाल एवं सदलगा ग्राम तो कर्नाटक की अन्तरात्मा ही रहे हैं, जो दिगम्बर मुनियों के जन्मदाता-केन्द्र बन गये। वहाँ के जैन समाज ने भारत को जो गुण-गरिष्ठ आचार्यरत्न प्रदान किये, उनमें उक्त शान्ति-सागर जी के अतिरिक्त आचार्य श्री पायसागर जी, देशभूषण जी, कुन्थुसागर जी, आचार्य विद्यानन्द जी, आचार्य विद्यासागर जी, आचार्य वीरसागर जी, वर्धमानसागर जी तथा बाहुबली सागर जी आदि-आदि प्रमुख हैं।

प्रतीत होता है कि आचार्य भद्रबाहु के अमृतमय प्रवचनों को दक्षिण भारत के प्राकृतिक वातावरण ने पूर्णतया आत्मसात् किया था। कृष्णा, कावेरी एवं गोदावरी के अविरल प्रवाहों एवं उनके जल-प्रपातों में समाहित द्वादशांग-वाणी के मधुर स्वर, वहाँ की वनस्पतियों, निर्झरों, पर्वतों एवं उद्यानों में उनकी वाणी ऐसी समाहित है कि जिस विवेकी ने उसे एकाग्रमन से सुना, उसे संसार के क्षणिक सुखों की असारता का भान हो गया और उसने तत्काल ही मुनि-मुद्रा धारण कर ली।

चारित्र-चक्रवर्ती महामनीषी राष्ट्रसन्त आचार्य श्री विद्यानन्द जी सम्भवतः उसी वातावरण से ऊर्जस्वित होकर लगभग चार दशक पूर्व उत्तर-भारत में पधारे और उन्होंने जिनवाणी के उद्धार तथा जैनधर्म के प्रचार-प्रसार के लिये जो कार्य किये, वे सभी बड़े ही अभूतपूर्व मौलिक, प्रभावक, प्रेरक एवं ऐतिहासिक हैं। स्थानीय समाजों तथा न्यास-धारियों को प्रेरित कर गुणवत्ता के आधार पर वरिष्ठ विद्वानों को नोबल पुरस्कार के समान पुरस्कारों से सम्मानित कराने की परम्परा उन्हीं ने प्रारम्भ करायी। इसी प्रकार विश्वविद्यालयों में प्राकृत एवं जैन-विद्या के विभागों की स्थापना कराना, शौरसैनी-प्राकृत साहित्य के प्रचार-प्रसार, उनके प्रामाणिक संस्करणों के प्रकाशन तथा उच्चस्तरीय शोध कार्यों के लिये कुन्दकुन्द भारती शोध संस्थान की स्थापना, प्राकृतविद्या (त्रैमासिक शोध-पत्रिका) के प्रकाशन एवं संचालन की प्रेरणा, जैनविद्या विषयक शोधार्थियों को शोधानुदानों के लिये समाज को प्रेरणा, जैन-विद्या एवं इतिहास विषयक दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन आदि के लिये प्रेरणा देकर भारत की राजधानी दिल्ली में जैनधर्म का उन्होंने अविस्मरणीय प्रचार-प्रसार किया/कराया है। प्राकृतभाषा एवं जैनसाहित्य की सेवा के लिये समर्पित विद्वानों को उनकी गुणवत्ता एवं वरिष्ठता के आधार पर राष्ट्रपति सम्मान पुरस्कार दिलाने हेतु उनकी बलवती प्रेरणाएँ भी अब साकार होने लगी हैं।

आचार्यश्री ने जैन धर्म के साथ-साथ यूनानी इतिहास, धर्म दर्शन तथा जैन एवं जैनेतर भारतीय धर्मों दर्शनों तथा पुरातत्त्व इतिहास एवं संस्कृति का भी गहन अध्ययन किया है, यही कारण है कि उनके प्रवचन बड़े ही रोचक, तुलनात्मक एवं शोधपरक होते हुए भी सरल भाषा एवं शैली में होने के कारण सर्वभोग्य होते हैं।

जन-जागरण, नैतिक उत्थान के बिन सम्भव नहीं और इसके लिये अनेक उपायों में से एक उपाय धर्मोत्सव, शलाका महापुरुषों अथवा शलाकेतर महापुरुषों की शताब्दी या सहस्राब्दी समारोह का आयोजन विशेष महत्त्व रखता है। अतः आचार्य विद्यानन्द जी ने इस विषय में गम्भीर चिन्तन किया, समय की नाड़ी टटोली और सामाजिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए भगवान महावीर का 2500वाँ परिनिर्वाण वर्ष समारोह, गोम्मटेश का सहस्राब्दि वर्ष समारोह तथा उसके साथ ही महासेनापति वीरवर श्रावक-शिरोमणि चामुण्डराय एवं उनके प्रतिष्ठाचार्य गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती-सहस्राब्दि-समारोह, अ.भा. दि. जैन मुनि परिषद् का गठन, बाहुबलि-कुम्भोज-क्षेत्र-विकासोत्सव, गोम्मटगिरि क्षेत्र स्थापना-समारोह, शाकाहार, सदाचार एवं श्रावकाचार समारोह, आचार्य कुन्दकुन्द-सहस्राब्दि-वर्ष समारोह, जैन-विद्या का गौरव ग्रन्थ 'कातन्त्र-व्याकरण' समारोह, शौरसेनी प्राकृत-साहित्य संसद की स्थापना, श्रुतपंचमी एवं प्राकृत भाषा दिवस समारोह, कलिंगाधिपति जैन सम्राट खारवेल-समारोह आदि-आदि उसी परिप्रेक्ष्य में उन्हीं के सान्निध्य में आयोजित किये गये।

इन आयोजनों से जैन-समाज की प्रतिष्ठा बढ़ी है, देश-विदेश में जैन-विद्या का आशातीत प्रचार-प्रसार हुआ है, जैन इतिहास के अनेक प्रच्छन्न तथ्यों को नया प्रकाश मिला है और विद्वानों में एक नई जिज्ञासा जाग्रत हुई है।

इस प्रकार अपनी दिगम्बर-मुनिचर्या के प्रभाव, प्रेरणा, प्रवचनों तथा लेखन से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने जैनधर्म एवं जैन-जागरण का अलख जगाया है और अपने ओजस्वी व्यक्तित्व से अतीतकालीन महामहिम आचार्यों के सारस्वत युग को स्मरण करने के लिये आज की पीढ़ी को ऊर्जस्वित एवं उत्तेजित होने के लिये बाध्य किया है।

यही नहीं, आचार्य श्री रहस्यवादी कवि होने के साथ-साथ एक महान् दार्शनिक चिन्तक एवं निबन्धकार भी हैं। उनकी निबन्ध- शैली देखकर यह अनुभव होता है कि हिन्दी - निबन्धों के पूर्व निर्धारित मानकों में भी उनकी शैली ने एक नया आयाम जोड़कर उस दिशा में भी एक नया वैशिष्ट्य प्रदान किया है।

पूज्य आचार्य विद्यासागर जी ने दक्षिणापथ से विहार कर उत्तरापथ के उस अंचल में जागृति की लहर उत्पन्न की है, जो युगों-युगों से अथवा भद्रबाहुकाल से वह यद्यपि जैन धर्म का केन्द्र रहा था किन्तु कुछ अज्ञात विषम परिस्थितियों और विदेशी-आक्रमणों के कारण, जहाँ की एकाग्रता भंग हो चुकी थी, वहाँ के निवासी यद्यपि श्रावकोचित आस्था, विश्वास, सरलता एवं जिनवाणी-प्रेम से सुसंस्कृत थे, फिर भी जन-जागृतिह्रासमान थी। ऐसे समय में पूज्य आचार्यश्री ने अपने दिगम्बर-सम्मत कठोर आचार एवं प्रवचनों की अमृत-स्रोतस्विनी प्रवाहित कर उस भूमि-बुन्देलखण्ड एवं बघेलखण्ड के प्रक्षेत्रों में जैनधर्म की प्रभावना कर सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय, विविध विकासात्मक योजनाओं को साकार करने की प्रेरणाएँ देकर अनेक ऐतिहासिक कार्य किये हैं।

श्रवणबेलगोल की पुण्यधरा के प्रतिष्ठाता पूर्व भट्टारकों का इतिहास तो हमें ज्ञात नहीं, किन्तु वर्तमान कालीन कर्मयोगी पूज्य भट्टारक चारुकीर्ति जी के विषय में हमें कुछ जानकारी है क्योंकि उसकी प्रवर-समिति ने उन्हीं के द्वारा संस्थापित 'प्राकृत ज्ञान भारती एजुकेशन ट्रस्ट' की ओर से आयोजित 'फर्स्ट नेशनल प्राकृत कान्फ्रेंस' के बैंगलोर अधिवेशन (दिसम्बर 1990) में वरिष्ठ 10 विद्वानों के साथ मुझे भी पुरस्कृत किया था। उस समय उनके साथ की बैठकों में कुछ विचार-विमर्श करने का सुअवसर भी मिला था। उस समय हमने यह अनुभव किया था कि कन्नड़, हिन्दी एवं अंग्रेजी पर समानाधिकार रखने वाले वे (भट्टारकजी) जैन-विद्या के प्रचार-प्रसार के लिये कितने चिन्तित हैं। यही नहीं, अपने स्तर से जैन समाज की नवीन पीढ़ी के भविष्य-निर्माण के लिये भी वे उतने ही चिन्तित हैं, जितने कि राष्ट्र की समस्याओं के समाधान के प्रति। इसके लिये उन्होंने अनेक योजनाओं पर तहेदिल से विचार किया है तथा उनमें से अनेक को साकार भी कर दिखाया है।

पूज्य भट्टारक जी के सामाजिक एवं राष्ट्रीय विचारों से प्रभावित होकर ही भारत की तत्कालीन लोकप्रिय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 'कर्मयोगी' की उपाधि से विभूषित कर उन्हें सार्वजनिक सम्मान प्रदान किया था।

आरा नगर (बिहार) से भी कर्नाटक का घना सम्बन्ध रहा है। इस प्रसंग में मैं प्रातः स्मरणीय ब्रह्म. नेमिसागर जी वर्णी तथा श्री स्व. पं. के. भुजबली शास्त्री का सादर स्मरण करता हूँ। क्योंकि पूज्य वर्णी जी ने सन् 1903 में आरा (बिहार) के जैन सिद्धान्त भवन का शिलान्यास कर कुछ समय वहाँ व्यतीत किया था तथा श्री पं. के. भुजबली जी ने वहाँ के ग्रन्थालयाध्यक्ष के पद को स्वीकार कर वहाँ सुरक्षित सहस्त्रों की संख्या में ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों की सुरक्षा-व्यवस्था एवं उनका मूल्यांकन किया था, साथ ही उनकी विवरणात्मक ग्रन्थ सूची भी तैयार कर उनमें छिपे हुए भारतीय सांस्कृतिक वैभव से प्राच्य विद्या जगत को सुपरिचित कराया था। भवन से प्रकाशित जैन सिद्धान्त भास्कर एवं जैन एण्टिक्वेरी का भी उन्होंने दीर्घकाल तक सम्पादन किया और उस माध्यम से जैन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं कन्नड़ साहित्य के अनेक मौलिक तथ्यों को प्रकाशित कर प्राच्यविद्या जगत को विचारोत्तेजित किया था।

इस प्रसंग में मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि जैन सिद्धान्त भवन के संस्थापक श्री बाबू देवकुमार जी जैन ने वर्णी जी की प्रेरणा से ही सहस्त्रों पाण्डुलिपियों तथा सहस्त्रों की संख्या में प्रकाशित सन्दर्भ-ग्रन्थों का संग्रह कर उसे भारत का श्रेण्यकोटि का ऐसा ग्रन्थागार बनाया कि जिसने महात्मा गाँधी, पं. मालवीय, पं. नेहरू, डॉ. हरमन याकोबी आदि को भी आकर्षित किया था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, डॉ. के.पी. जायसवाल, डॉ. आर.डी. बनर्जी की तो यहाँ अक्सर बैठकें होती रहती थीं तथा उनकी नई-नई साहित्यिक योजनाएँ यहीं बैठकर बनती थीं। खारवेल-शिलालेख की खोज की योजना जैन सिद्धान्त भवन, आरा में बैठकर ही बनी थी।

श्रद्धेय भट्टारक जी के दिगम्बर जैन मठ का सामान्य जनहित में लोककल्याणकारी अनेक रचनात्मक कार्यों के कारण विशेष महत्त्व तो है ही, उन सबसे भी अधिक महत्त्व इस तथ्य में है कि दिगम्बरों के मूल आगम साहित्य-षट्खण्डागम की प्राचीनतम दुर्लभ ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों की सुरक्षा का प्रथम श्रेय इसी मठ को है। बाद में सम्भवतः कुछ कारण-विशेष से उन्हें मूड़बिद्री के शास्त्र-भण्डार में स्थापित-प्रतिष्ठापित कर दिया गया। यदि इन भट्टारक-पीठों ने प्राणपण से उनकी सुरक्षा न की होती तो देश-विदेश के आक्रान्ताओं ने उनकी क्या दुर्गति की होती, उसका विचार करने मात्र से ही रोंगटे खड़े होने लगते हैं और चेहरा भयाश्रित विकृति को धारण करने लगता है। इन पाण्डुलिपियों के प्रतिलिपि एवं नागरीकरण सम्बन्धी कार्यों में पं. गजपति उपाध्याय, विदुषी पण्डिता लक्ष्मीबाई, पं. सीताराम शास्त्री एवं पं. लोकनाथ शास्त्री को लगातार लगभग 15-20 वर्षों तक किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, उनका अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकता है। उसके बाद उनके सम्पादन, अनुवाद एवं प्रकाशन में भी लगभग 50 वर्ष लग गये। तब कहीं हम लोग अपने उन आगम ग्रन्थों का दर्शन कर सके हैं। उनके महामहिम सम्पादकों - प्रो. डॉ. हीरालाल जैन, प्रो. डॉ. ए.एन. उपाध्ये, पं. देवकीनन्दन जी शास्त्री, पं. हीरालाल जी सिद्धान्त शास्त्री, पं. फूलचन्द्र जी शास्त्री, पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री एवं पं. लालबहादुर जी शास्त्री के लिये भी विनम्र प्रणाम है जिन्होंने लगभग 19000 पृष्ठों में समाहित इन आगम-ग्रन्थों के सम्पादनादि में अपनी युवावस्था की समस्त ऊर्जाशक्ति को समर्पित कर दिया। उनके इस अथक परिश्रम ने भारतीय प्राच्यविद्या एवं जैन समाज के गौरव को बढ़ाया है।

महाजन टोली नं. 1,
आरा - 802301 (बिहार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसा नाम वैसा काम है मुनि श्री सुधासागर का

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती

हमारा देश संतपरम्परा और संतों के विचारों-कार्यों से सदैव सम्पोषित होता रहा है। संत यहाँ लेते कम और देते अधिक हैं। उनकी सन्निधि ही नवस्फूर्ति, नवचेतना और नयी ऊर्जा प्रदान करती है। संतों को चलते-फिरते तीर्थों की उपमा दी जाती है जिसे निरर्थक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे जहाँ जाते है वहाँ तीर्थों जैसा माहौल पैदा हो जाता है और तीर्थदर्शन की प्रेरणा, वैराग्य के भाव भी जाग्रत होते हैं। वे परमोपकारी हैं, क्योंकि निस्वार्थभाव से भूले भटके जनों को सन्मार्ग से जोड़ते हैं। बीसवीं शती में आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज की परम्परा में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के रूप में विद्वान संत का अभ्युदय समाज पर महान उपकार सिद्ध हुआ जिनकी जयोदय, वीरोदय महाकाव्य जैसी कृतियाँ तो पूज्यता को प्राप्त हुईं ही, उनकी जीवन्त कृति आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने तो मानो साधुता को मूर्तिमान ही कर दिया। वे आज के आदर्श संत हैं, परमप्रिय हैं और संतत्व को जीते हैं। उन्हीं प.पू. आचार्य श्री विद्यासागर जी की मूल्यवान कृति हैं मुनिश्री सुधासागर जी महाराज, जिनके पास विचार-सुधा का अमित भण्डार है, जिनके पास मानव-हित-साधक प्रेरणायें हैं, जिनके पास कर्तृत्व का अविरल प्रवाह है जिनके स्पर्श से कुछ न कुछ या कहें सब कुछ पावन हो जाता है। उनके दादागुरु की दो प्रेरणायें उनमें सहज ही दृष्टिगोचर होती हैं।' 1. वे रोटी के स्वार्थ के अभिशप्त नहीं, मनुष्यता के परमार्थ से आपूरित हैं। 2. आत्महित के अनुकूल आचरण को मनुष्यता मानते हैं। आज का परिदृश्य भले ही ऐसा है कि -

स्वरोटिकां मोटयितुं हि शिक्षते जनोऽखिलः सम्बलयेऽधुना क्षितेः।
न कश्चनाप्यन्यविचारतन्मना नृलोकमेषा ग्रहते हि पूतना।।

(वीरोदय महाकाव्य 9/9)

अर्थात् आज भूतल पर सभी लोग अपनी-अपनी रोटी को मोटी बनाने में लगे हुए हैं। कोई भी किसी अन्य की भलाई का विचार नहीं कर रहा है। आज तो यह स्वार्थ परायणता रूपी पूतना (राक्षसी) सारे मनुष्य लोक को ही ग्रस रही है। इस परिदृश्य में भी अविचल भाव से जो संत आत्मभाव की आभा से मंडित हैं और जिसे आराम का अर्थ आ+राम = राम (परमात्म) सहित है, का नाम सुधासागर है जो मानते हैं कि -

मनुष्यता ह्यात्महितानुवृत्तिर्न केवलं स्वस्यसुखे प्रवृत्तिः।
आत्मा यथा स्वस्य हिता परस्य विश्वैक संवादविधिर्नरस्य।।

(वीरोदय महाकाव्य 17/6)

अर्थात् आत्महित के अनुकूल आचरण का नाम ही मनुष्यता है, केवल अपने सुख में प्रवृत्ति का नाम मनुष्यता नहीं है, अतः विश्वभर के प्राणियों के लिए हितकारक प्रवृत्ति करना ही मनुष्य का धर्म है।

मुनि श्री सुधासागर जी के प्रिय विषय हैं - तीर्थ जीर्णोद्धार, तीर्थ सृजन, सत्साहित्य का अध्ययन और प्रकाशन, आत्मविद्या से संपृक्त शिक्षा और शिक्षालयों का विकास, अनुसंधान और विद्वद्-गुणानुराग, जीव रक्षा और निःशक्त जनों को संबल देना। उनके लिए अपने आवश्यक ध्यान और अध्ययन अनिवार्य हैं, अपरिहार्य हैं। विरासत का संरक्षण और संरक्षित को आधुनिक सीढ़ी से जोड़ना उनका अभीष्ट है। देवगढ़ तीर्थ क्षेत्र का जीर्णोद्धार, अशोक नगर में त्रिकाल चौबीसी का निर्माण, सांगानेर के संघीजी मंदिर का जीर्णोद्धार एवं समुन्नयन, श्रमण संस्कृति संस्थान (सांगानेर) की स्थापना, रैवासा के जैनमंदिर को भव्यरूप प्रदान कर भव्योदय तीर्थ के रूप में विकास, ज्ञानोदय तीर्थ-नारेली के रूप में राजस्थान की मरुभूमि में नवतीर्थ का अवदान, शताधिक गोशालाओं की स्थापना, विकलांगों को कृत्रिम अंग प्रदान कर सीकर जिले को विकलांगमुक्त करवाना, तीन सौ से अधिक शोध - खोजपूर्ण साहित्यिक कृतियों का प्रकाशन, विद्वत्संगोष्ठियाँ आदि कार्य उनके प्रेरणा से सहज सम्पन्न हुए हैं। वे बिना समाज की प्रार्थना के स्वयं आगे होकर कोई कार्य नहीं करते, न करवाते हैं, किन्तु यदि कोई व्यक्ति या समाज कुछ अच्छा करना चाहता हो तो उसे आशीर्वाद भी भरपूर देते हैं। इतना आशीर्वाद देते हैं कि फिर भक्त को किसी बात की जीवन में कमी नहीं होती, उसके यश में वृद्धि होती है। आखिर हो भी क्यों न, संत की सन्निधि प्राप्त करके वह संत सौरभ की सुगन्ध से वंचित कैसे रह सकता है? वे ऐसे दिगम्बर साधु हैं जो स्वयं परीक्षार्थी हैं और स्वयं परीक्षक हैं। वे निर्भय रहते हैं क्योंकि उनमें भय नहीं है। उनमें भय भी इसलिये नहीं है क्योंकि वे सब जीवों को अभय प्रदान करते हैं। जो लोग उनके विरोधी हैं, दरअसल उन्हें विकास कार्यों से डर लगता है, क्योंकि वे पुरानी पीढ़ी के द्वारा प्रदत्त विरासत को भोगना तो चाहते हैं, किन्तु नयी पीढ़ी को कोई विरासत सौंपना नहीं चाहते। ऐसे लोगों को उनका आशीर्वाद पहले है - सद्धर्मवृद्धिरस्तु। यदि उनमें सद्धर्म का विकास नहीं हुआ, तो उनका उत्थान कैसे होगा?

परमपूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज आतंकवाद के दौर में आतंकित नहीं होते। उनकी चर्या आतंकित नहीं करती, अपितु श्रद्धालु बनाती है। उनकी सब चर्या अमृत-तत्त्व से आपूरित है, इसलिये वे सुधीजनों के लिए सुधासागर के रूप में पूज्य है। उनमें 'दिनकर' की ये पंक्तियाँ प्रतिभासित होती हैं-

कौन बड़ाई चढ़े शृंग पर अपना एक भार लेकर?
कौन बड़ाई पार गए जो अपनी एक तरी खेकर?
सुधा गरल वाली यह धरती उसको शीश झुकाती है,
खुद भी चढ़े, साथ ले चलकर गिरतों को बाँह देकर।।

एल-65, न्यू इंदिरा नगर ए,
बुरहानपुर (म.प्र.) 450331

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आँखे नहीं, आँसू पोंछो

श्रीमती सुशीला पाटनी

अपने आँसू पोंछना धर्म नहीं, दूसरों के आँसू पोंछना धर्म है। आज दुनिया में बहुत आँसू हैं, फिर भी हमारी आँखों में आँसू नहीं आ रहे हैं, हमारी आँखे गीली नहीं हो रही हैं। अहिंसा की पहचान आँखों से नहीं, आँसुओं से होती है। लेकिन आँसू उन्हीं आँखों में आ सकते हैं, जिसके दिल में करुणा होगी, दया होगी।

आँसू बहाने वाले इस दुनिया में बहुत हैं, लेकिन जो दूसरों के दुःखों में रोते हैं, आँसू बहाते हैं, दूसरों के आँसू पोंछते हैं, ऐसे लोगों की संख्या इस दुनिया में बहुत कम है। अब आप दूसरों के आँसू पोंछना सीखिए। अपने आँसू तो सभी पोंछ लेते हैं। अपने आँसू पोंछना धर्म नहीं, दूसरों के आँसू पोंछना धर्म है। आज दुनिया में बहुत आँसू हैं, फिर भी हमारी आँख में आँसू नहीं आ रहे हैं, हमारी आँखें गीली नहीं हो रही हैं। हमारे पास आँखें तो हैं, लेकिन आँसू नहीं। अहिंसा की पहचान आँखों से नहीं, आँसूओं से होती है, लेकिन आँसू उसी के आँखों में आ सकते हैं, जिसके दिल में करुणा होगी, दया होगी। करुणा से खाली दिल वाले की आँख में आँसू नहीं आ सकते। आज जो मूक हैं, निर्दोष हैं, अनाथ हैं ऐसे निरीह जानवरों की आँखों में आँसू हैं, वे पशु अपनी करुण पुकार कैसे कहें, क्योंकि उनके पास वचन नहीं, वे बोल नहीं सकते।

यदि हमें इन मूक पशुओं की बददुआ लगी तो हमारा देश तबाह हो सकता है। आज तो वैज्ञानिकों ने भी सिद्ध कर दिया है कि हिंसा, कत्ल की वजह से भूकम्प आते हैं। आज प्रकृति में जो घटनाएँ घट रही हैं, कहीं अकाल, कहीं भूकम्प, कहीं हिंसा, ये सारे रूप हिंसक कार्यों के ही हैं। हिंसा से सारी प्रकृति आन्दोलित हो जाती है, क्षुब्ध हो जाती है, वातावरण उत्तेजित हो जाता है, पर्यावरण नष्ट हो जाता है। यदि हमारे देश में कत्ल होता रहा, कत्लखाने खुलते रहे, मांस निर्यात होता रहा तो क्या हमारा पर्यावरण सुरक्षित रह सकता है? और जब हमारा पर्यावरण ही नष्ट हो जाये तब हमारी उन्नति का क्या अर्थ? क्या विदेशी मुद्रा पर्यावरण को बचा लेगी? जब आदमी का ही जीना मुश्किल हो जायेगा, तब दुनिया की सारी संपत्ति किस काम की? पर्यावरण और स्वास्थ्य का ठीक रहना ही मानव जाति का विकास है, पर्यावरण को बिगाड़ करके हम अपने स्वास्थ्य को जिन्दा नहीं रख सकते। अतः पर्यावरण की रक्षा के लिये हिंसा, कत्ल के काम छोड़ने होंगे, पशुओं को बचाना होगा।

सुनते हैं कि पहले देवताओं के लिये पशुओं की बलि चढ़ाते थे, लेकिन आज आदमी के लिए पशुओं की बलि चढ़ाई जा रही है। आदमी के लिये पशु का कत्ल हो रहा है, देश की उन्नति के लिए पशुओं का वध हो रहा है, खून, मांस बेचकर देश की उन्नति का स्वप्न देश की बर्बादी का लक्षण है। आदमी के पास भुजाएँ हैं, फिर उन भुजाओं का सही दिशा में पुरुषार्थ क्यों नहीं किया जा रहा है? आज भुजाओं से भी पैर का काम लिया जा रहा है। भला हुआ कि आदमी के पास सींग नहीं हैं, अन्यथा यह आदमी क्या क्या करता, पता नहीं। दूसरों के पैर तोड़कर हम अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकते। भारत कृषिप्रधान देश है। यहाँ की जनता सदियों से पशु-पालन और उसके माध्यम से अपना निर्वाह करती चली आ रही है। कृषि उत्पादन के क्षेत्र में गौ-वंश का उपकार भुलाया नहीं जा सकता। आज अध्यात्म के शिविर लगाने में जितना पैसा खर्च किया जा रहा है यदि वह पैसा मांसनिर्यात रोकने में लगाया जावे तो बहुत अच्छा होगा और अब शिविर शहर में नहीं, राष्ट्रपति भवन में लगाओ और वह शिविर दया का, अनुकम्पा का, करुणा, अहिंसा का हो जिससे लाखों करोड़ों जानवरों का कत्ल रुके। देश के राष्ट्रपति को देश की पशु सम्पदा का ध्यान होना चाहिए, लेकिन आज नहीं है, इसीलिए नागरिकों अब जागो और मूक पशुओं की आवाज को राष्ट्रपति भवन तक पहुँचाओ, ताकि वह भवन पशुओं की पुकार से हिल उठे और पशुओं का कत्ल होना बन्द हो जाये, मांस निर्यात रुक जाये।

आओ, हम सब मिलकर अपने देश से इस पशु वध को रुकवायें। पशुवध रुकवाना ही आज की अनिवार्यता है।

जंगल में रहने वाले भी अहिंसा, करुणा का पालन करते थे और आज शहरों में रह करके भी हममें अहिंसा और करुणा नहीं है।

हमारी साक्षरता का क्या अर्थ है? वह जंगली हाथी साक्षर नहीं था। वह हाथी किसी स्कूल कालेज में नहीं पढ़ा था वह निरक्षर था, फिर भी उसमें मानवता थी, लेकिन हमारे पास आज मानवता मर गई है। अरे! धर्म करने वालो, जरा सोचो तुमने आज तक कितना धर्म किया, कितना दान दिया? कितना त्याग किया? जीवन में जीवित धर्म का पालन करो। पशुओं के पास भी धर्म होता है, भले वे किसी मंदिर नहीं जाते। उनमें भी अहिंसा और करुणा होती है। आप जरा विचार कीजिए, जब एक हाथी भी एक खरगोश को अपने पैर के नीचे जगह दे सकता है, जीवनदान दे सकता है फिर आप तो आदमी हैं, क्या आप पशुओं को जीवनदान नहीं दे सकते?

आर.के. मार्बल्स लि., मदनगंज-किशनगढ़ 305801, जिला- अजमेर (राजस्थान)

सूचना

इन्दौर जैनतिथि दर्पण नि:शुल्क प्राप्त करें

प्राप्ति स्थान- श्री गुलाबचन्द जी बाकलीवाल

35/1, नार्थ राजमोहल्ला इन्दौर-2, म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खुलकर प्रेम करने की छूट

डॉ. अशोक सहजानन्द

पिछले कुछ वर्षों से कुछ अखबारों और सेटेलाइट टी.वी. चैनलों की कृपा से पाश्चात्य सभ्यता पर मुग्ध हमारी नई पीढ़ी ने अपनाना/मनाना शुरू किया है एक नया त्यौहार। यह नया त्यौहार है 'वेलेंटाइन डे'।

जिन्हें 'वेलेंटाइन डे' का मतलब तथा उसका इतिहास भी नहीं मालूम, वे भी उसके रंग में डूब जाते हैं। 'वेलेंटाइन डे' को समर्पित एक 'रविवार्ता' में इस दिवस पर विशेष सामग्री छापी गई और बताया गया कि 'वेलेंटाइन डे' का मतलब है- 'कहो न प्यार है।' और यह भी कि यद्यपि प्रेम-प्रदर्शन में लड़के ही पहल करते हैं लेकिन नियमानुसार 'लीप ईयर' में लड़कियों को भी पहल करने की छूट थी और कौन भूलना चाहेगा कि सन् 2000 भी तो लीप ईयर था।

एक ओर हर समझदार माता-पिता या, अभिभावक पढ़ने-लिखने की उम्र में अपने बच्चों को इस 'प्रेम रोग' से बचाने की एहतियात बरतते हैं, दूसरी ओर भाषायी अखबार, सब नहीं केवल कुछ, किशोर-किशोरियों और युवक-युवतियों को उकसा रहे हैं- 'लीप ईयर है- खुलकर इजहार करो।'

पहला प्यार कितना खतरनाक होता है, यह छिपा नहीं है। प्याली में आये तूफान की तरह वह होता तो क्षणिक है, लेकिन क्षणमात्र में ही वह कभी-कभी पूरी जिंदगी विषैली कर जाता है। यह प्यार कोई सात्त्विक नहीं होता, वह वासना प्रेरित होता है जो इस उम्र में सहज और स्वाभाविक भी है, लेकिन हर स्वाभाविक बात उचित और अच्छी भी होती है, इसे शायद ही कोई स्वीकार करे।

'वेलेंटाइन डे' एक पश्चिमी सभ्यता का त्यौहार है। हर सभ्यता का अपना इतिहास, एक संस्कृति होती है जो एक समुदाय विशेष की मानसिकता की रचना करती है। अमेरिका में किशोर-किशोरियों की 'डेटिंग' एक आम स्वीकार्य परम्परा है, रिवाज है। कोई उसे बुरा नहीं मानता। इस डेटिंग के चलते कौमार्यभंग पर भी वहाँ विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। नार्वे और स्वीडन में 'सैक्स शॉप' आम है। वहाँ कुमारी लड़कियों के माँ बनने को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है। लेकिन वर्षों से चली आ रही इस मानसिकता के घातक परिणाम अब नजर आने लगे हैं और सरकार तथा समाज के कर्णधार चिंतित हैं। अमेरिका में परिवार-संस्था टूट गई है। विवाह-संस्था में भी दरारें पड़ रही हैं। फलतः सामाजिक जीवन तनावों से भर गया है। तमाम भौतिक सम्पन्नता के बावजूद अमरीकियों का निजी जीवन पीड़ा और व्यथा से भरा हुआ है।

विकसित होते, विकासमान देश बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आर्थिक साम्राज्यवाद के सहज शिकार होते हैं। 'वेलेंटाइन डे' जैसे त्यौहार 'ब्यूटी कांटेस्ट' जैसे आयोजन उनके उत्पादों की खपत बढ़ाते हैं, दूसरे अर्थों में उनका लाभ दुगना-तिगुना हो जाता है। अकेले वेलेंटाइन-डे पर कहा गया है - करोड़ों के कार्ड बिके हैं।

भारत जैसे देश में जहाँ कुपोषण, कुस्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल, साफ-सुथरे आवास की समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है, वहाँ युवा पीढ़ी की सृजनात्मक शक्ति को सही दिशा की ओर न मोड़, इस तरह के आयोजनों में मोड़ना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है। आधुनिकता की उमंग में कहीं हम किसी सुनियोजित षडयंत्र के शिकार तो नहीं बनाये जा रहे हैं? भारत के लिए कुछ वर्षों तक एड्स दूर की चीज थी, अब भारत में एड्स के रोगियों की संख्या चिंताजनक होती जा रही है। धार्मिक आयोजनों में लाखों रुपया फूँक देने वाले लोगों और उनके धर्माचार्यों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। अभी भी समय है।

सम्पादक

'आपकी समस्या हमारा समाधान'

(हिन्दी मासिक),

239, दरीबा कलाँ, दिल्ली-110006

अखिल भारतीय जैन प्रतिभा प्रोत्साहन योजना

सराकोद्धारक परम पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से प्रतिभावान जैन छात्रों को प्रोत्साहित करने के लिये 'प्रतिभा प्रोत्साहन योजना'2001 अपने द्वितीय वर्ष में प्रगति पर है। भारत के समस्त माध्यमिक शिक्षा बोर्डों की सैकण्डरी/सीनियर सैकण्डरी परीक्षा 2001 में वरीयता सूची (मैरिट लिस्ट) में स्थान प्राप्त अथवा परीक्षा में 90 प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करने वाले, जैसी बोर्ड की व्यवस्था है छात्र-छात्राओं को दिसम्बर के अंत में पदक, पुरस्कार, सम्मान द्वारा प्रोत्साहित किया जायेगा।

प्रोत्साहन सम्मान का यह समारोह दिसम्बर 2001 के अन्त में परम पूज्य उपाध्याय श्री के मंगल सान्निध्य में आयोजित किया जायेगा। स्थान और तिथि की सूचना शीघ्र प्रकाशित की जायेगी तथा चयनित छात्रों को सूचना डाक से भेज दी जायेगी। चयनित छात्र एवं उसके एक अभिभावक को समारोह में सम्मिलित होने के लिये द्वितीय श्रेणी स्लीपर (आरक्षित) रेल/बस का दोनों ओर का वास्तविक व्यय, साठ रुपये वाहन व्यय के साथ समिति के द्वारा प्रदान किया जायेगा। छात्रों को योजना के निर्धारित आवेदन पत्र भरकर तथा अपने शाला प्रधान से अग्रेषित कराकर अंक सूची की प्रमाणित फोटो प्रति के साथ आयोजन सचिव को भेजने होते हैं। अनेक स्थानों से आवेदन पत्र प्राप्त हो चुके हैं फिर भी कोई जैन छात्र यदि आवेदन करना चाहे तो निम्नांकित पते पर पत्र लिखकर आवेदन-पत्र मँगा लें और शीघ्र भरकर भेजे।

कैलाश गदिया (जैन),
आयोजन सचिव,
अखिल भारतीय जैन प्रतिभा प्रोत्साहन योजना, 38 पार्श्वनाथ कॉलोनी, आंतेड़,
वैशाली नगर, अजमेर (राज.)
फोन : (आ.) 0145-425003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंका समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

शंकाकार - देवेश जैन, सागर

शंका - क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उत्तम भोगभूमि में ही जन्म लेता है या जघन्य में भी?

समाधान - क्षायिक सम्यकदृष्टि मनुष्य को क्षायिक सम्यक्त्व हो जाने के बाद यदि आयुबंध होता है, तो वह देव आयु का ही होता है। परन्तु यदि क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होने से पूर्व उसने मनुष्य आयु या तिर्यंच आयु बाँध ली हो, तो ऐसे बद्धायुष्क मनुष्य अगले भव में भोग भूमि के तिर्यंच या मनुष्य ही होते हैं, कर्म भूमि के नहीं। ऐसे जीव के लिये यह नियम नहीं है कि वह क्षायिक सम्यक्त्वी होने के कारण उत्तम भोग भूमि में ही जन्म लेगा अन्य में नहीं, वह उत्तम-मध्यम या जघन्य किसी में भी जन्म ले सकता है। ति.प. अधिकार 511/515 में इस प्रकार कहा है-

एदे चउदस मणुओ, पडिसुद पहुदि हु णाहिरायंता।
पुव्व भवम्हि विदेहे, रायकुमारा महाकुले जादा।।
कुसला दाणादीसु, संजमतव णाणवंत पत्ताणं।
णिय जोग्ग अणुट्ठाणां, मद्दव मज्जव गुणेहि संजुत्ता।।
मिच्छत्त भावणाएं, भोगाऊं बंधिऊण ते सव्वे।
पच्छा खाइय सम्मत्तं, गेण्हंति जिणिंद चरण मूलम्हि।।
णिय जोग्गसुदं पडिदा, खीणे भउम्मि, ओहि णाण जदा।
उप्पज्जिदूण भोगे, केइ णरा ओहि णाणेण।।
जादि भरेणकेई भोग मणुस्साण जीवणोवायं।
भासंति जेणतेणं मणुणो भणिदा मुणीदेहिं।।

(तिलोय पण्णत्ति 4/511-515)

अर्थ- प्रतिश्रुति आदि नाभिराय पर्यन्त ये 14 ही मनु पूर्व भव में विदेह क्षेत्र के अंतर्गत महाकुल में राजकुमार थे। संयम, तप तथा ज्ञान से युक्त पात्रों को दानादि देने में कुशल, स्वयोग्य अनुष्ठान से युक्त तथा मार्दव आर्जव आदि गुणों से सम्पन्न वे सब पूर्व में मिथ्यात्व भावना से भोगभूमि की आयु बाँध कर पश्चात् जिनेन्द्र के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं। अपने योग्य श्रुत को पढ़कर आयु के क्षीण हो जाने पर भोगभूमि में अवधि ज्ञान सहित मनुष्य उत्पन्न होकर इन 14 में से कितने ही अवधि ज्ञान से तथा कितने ही जातिस्मरण से भोगभूमिज मनुष्यों को जीवनोपाय बताते हैं, इसलिये ये मुनीन्द्रों द्वारा 'मनु' कहे गए हैं।

(ऐसा ही प्रमाण - आदि पुराण पर्व 3, श्लोक नं. 207 से 212 तक)

जयधवल - पु. 2/260 में वीरसेन स्वामी जी लिखते हैं-

'तिरिक्ख गईए तिरिक्खेसु एक्कवीस विह केवडिय। जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो, उक्कस्सेण तिण्णि पालिदोवमाणि।

अर्थ - तिर्यंचगति में तिर्यंचों में 21 मोह प्रकृति के सत्त्ववालों का एक जीव की अपेक्षा कितना काल है? जघन्य से पल्य का असंख्यातवाँ भाग तथा उत्कृष्टतः 3 पल्य।

भावार्थ - तिर्यंचों में 21 मोह प्रकृति के सत्व वाले जीव का तात्पर्य क्षायिक सम्यक्दृष्टि तिर्यंच से है अर्थात् तिर्यंचगति में क्षायिक सम्यक्दृष्टि जीव कितने समय तक रहता है उसके उत्तर में कहा है कि जघन्य से पल्य का असंख्यातवाँ भाग और उत्कृष्टतः तीन पल्य। यहाँ जघन्य से असंख्यातवाँ भाग से तात्पर्य जघन्य भोगभूमि की जघन्य आयु से और तीन पल्य का तात्पर्य उत्तम भोगभूमि की उत्कृष्ट आयु से है। निष्कर्ष यह है कि श्री जयधवला के आधार पर भी क्षायिक सम्यक्दृष्टि जीव जघन्य, मध्यम और उत्तम तीनों भोगभूमि में पैदा हो सकता है।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि चौदहवें राजा नाभिराय की आयु एक समय अधिक एक करोड़ पूर्व माननी चाहिए, न कि एक करोड़ पूर्व। क्योंकि भोगभूमियों की जघन्य आयु करोड़ पूर्व एक समय है।

शंकाकार- ब्रह्मचारी अरुण, मथुरा

शंका- विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान का विषय क्षेत्र कितना है। यह कितने क्षेत्र की बात को जानता है?

समाधान- विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान का विषय क्षेत्र श्री सर्वार्थसिद्धि में इस प्रकार कहा है - क्षेत्र तो जघन्यतः योजनपृथक्त्वं, उत्कर्षेण मानुषोत्तरशैलस्याभ्यंतरं, न बहिः।

अर्थ- क्षेत्र की अपेक्षा (विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान) जघन्य से योजन पृथक्त्व और उत्कृष्ट से मानुषोत्तर पर्वत के भीतर की बात जानता है, इससे बाहर की बात नहीं जानता। 1/23 टीका।

श्री राजवार्तिक में भी 1/23 की टीका में, ठीक उपरोक्त प्रकार से ही लिखा है।

इससे स्पष्ट होता है कि इस ज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र 450000 यो. है पर मानुषोत्तर पर्वत के बाहर नहीं। परन्तु इस आशय को स्पष्ट करते हुए आ. वीरसेन स्वामी ने श्री धवला पु. 9 पृष्ठ 67-68 इस प्रकार कहा है-

'माणुसुत्तर सेलस्स अब्भंतर दो चेव जाणेदि णो बहिद्धा' त्ति वग्गण सुत्तेण णिद्धिट्ठादो माणुसखेत्त अब्भंतरट्ठिद सव्व मुत्ति दव्वाणि जाणदि णो बाहिराणि त्ति के वि भणंति। तण्ण घडदे, मणुस्सुत्तर सेल समीवे ठइदूण बाहिर दिसाए कओवयोगस्स णाणाणुप्पत्तिप्प संगादो। होदु च ण, तदणुप्पत्तीए कारणा भावादो। ण ताव खओव समाभावे... अणिंदियस्स पच्चक्खस्स... माणुसुत्तर सेलेण पडिधादाणु ववत्तीदो। तदो माणुसुत्तर सेलब्भंतर वयणं ण खेत्तणियामयं, किंतु माणुसुत्तर सेलब्भंतर पण दालो सजोयण लक्खणियामयं, विउलमदि मदि मणपज्जवणाणुज्जोय सहिद खेत्ते धणागारेण ठइदे पणदाली सजोयण लक्खमेत्तं चेव होदि त्ति।

अर्थ- 'मानुषोत्तर शैल के भीतर ही स्थित पदार्थ को जानता है उसके बाहर नहीं' ऐसा वर्गणासूत्र द्वारा निर्दिष्ट होने से, मनुष्य क्षेत्र के भीतर स्थित सब मूर्त द्रव्यों को जानता है, उससे बाह्य क्षेत्र में नहीं, ऐसा कोई आचार्य कहते हैं। किन्तु यह घटित नहीं होता है, क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा स्वीकार करने पर मानुषोत्तर पर्वत के समीप में स्थित होकर बाह्य दिशा में उपयोग करने के ज्ञान की उत्पत्ति न हो सकने का प्रसंग होगा। यह प्रसंग आवे तो आने दो, यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि उसके उत्पन्न हो सकने का कोई कारण नहीं है। क्षयोपशम का तो अभाव है नहीं, और न ही मनःपर्यय के अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष का मानुषोत्तर पर्वत से प्रतिघात होना संभव है। अतएव 'मानुषोत्तर पर्वत के भीतर' यह वचन, क्षेत्र का नियामक नहीं है, किन्तु 'मानुषोत्तर पर्वत के भीतर' 4500000 योजनों का नियामक है, क्योंकि विपुलमतिज्ञान का उद्योत सहित क्षेत्र को घनाकार से स्थापित करने पर 4500000 योजन मात्र ही है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि मानुषोत्तर पर्वत, क्षेत्र का नियामक न होकर 45 लाख योजनों का नियामक है। अर्थात् विपुलमतिमनःपर्यय ज्ञानी मुनि जहाँ पर स्थित हों, उसको केन्द्र बिन्दु मानकर यदि 22.50 लाख योजन अर्द्धव्यास एक वृत्त खेंचा जावे तो जितना क्षेत्र आता है, उतना इस ज्ञान का क्षेत्र मानना चाहिए। अर्थात् यदि इस ज्ञान के धारी मुनिराज मानुषोत्तर पर्वत के किनारे पर खड़े हों तो वे सुदर्शन मेरु की तरफ 22.50 लाख योजन और मानुषोत्तर के बाहर 22.50 लाख योजन क्षेत्र के भीतर स्थित चिन्तवन करने वाले जीव के विचारों को जान लेंगे और यदि मन में चिन्तित पदार्थ इतने ही क्षेत्र के अंदर स्थित है, तो उसे भी जानेंगे। यदि चिन्तित पदार्थ इस क्षेत्र के बाहर है तो नहीं जान सकेंगे।

विपुलमतिमनःपर्यय का उत्कृष्ट क्षेत्र ऊँचाई मेरु के बराबर अर्थात् एक लाख योजन बनता है। अतः यदि कोई व्यक्ति मेरु की चूलिका के ऊपर स्थित सौधर्म स्वर्ग के विमान की कोई बात मन में विचार रहा हो तो वे मुनिराज उसके विचार को तो जान सकेंगे, परन्तु सीमा से बाहर होने के कारण पदार्थों को नहीं जान सकेंगे।

गीत

भूले-बिसरे अपने को

ऋषभ समैया 'जलज'

भूले-बिसरे अपने को
जमकर जकड़े सपने को

●

भीतर कोलाहल-हलचल
बैठे माला जपने को

●

पाप-कषायी जंग चढ़ी
छोड़ा नर-भव खतने को

●

भाव-भासना-भान नहीं
लगे ऋचाएँ रटने को

●

कच्चे मिट्टी के बर्तन
भट्टे डालो पकने को

●

आकुलता की बारिश में
समता छाता बचने को

●

धर्म बिलोना माखन सा
नय की डोरी मथने को

●

सम्यक बीज बुआई कर
संयम सींच पनपने को

●

हटें विकारों के बादल
आतम-सूर्य चमकने को

निखार भवन
कटरा बाजार, सागर

दो कविताएँ

डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'

दशा/दिशा

एक दिशा में
चार चले
समझो, कुछ कंधे पर है।
चार दिशा में
एक चले
समझो, वह धंधे पर है।
न एक दिशा
न चार दिशा
है सही दिशा वह
जो दशा-दिशा बदले।
यदि बदल सकी यह दिशा-दशा
तो समझो, वह अपने पर है॥

लड़ाई

उसूलों की लड़ाई
बसूलों से हो रही है
यह मैं नहीं कहता
सारी जनता कह रही है
यह किसकी, किससे, कैसी लड़ाई है
जिसमें न क्रान्ति है, न शान्ति है
बस एक भ्रान्ति है।

एल-65, न्यू इंदिरा नगर, बुरहानपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यंग्य

कवियों की बस्ती में

शिखरचन्द्र जैन

आदमी के जीवन में एक समय ऐसा अवश्य ही आता है जब उसके मन में कविता लिखने की हूक उठती है। यह अवस्था बहुधा, किशोर से युवा होने के संक्रमण काल में होती है। इन दिनों हर आदमी कविता की दो-चार पंक्तियाँ तो लिख ही डालता है। बाज लोग दस-बीस तक लिख लेते हैं। जबकि कुछ ऐसे भी होते हैं जो आरम्भ से ही महाकाव्य लिखने बैठ जाते हैं। ज्यादातर लोगों में यह बीमारी अल्प-कालीन होती है। पर कुछ थोड़े से लोग इस बीमारी से लम्बे समय तक ग्रसित रहते हैं। ऐसे लोग कवि कहलाते हैं अथवा कहलाने हेतु प्रयत्नशील रहते हैं।

इसके आगे जो बात मैं कहने जा रहा हूँ उसका उद्‌भव पिछली सदी के सातवें दशक के मध्य में हुआ था। उस समय मैं भिलाई स्टील प्लान्ट की राजहरा लौह अयस्क खदान में बिजली-इंजीनियर के पद पर नया-नया पदस्थ हुआ था। तब राजहरा पहाड़ लगभग अपने मूल रूप में था और वहाँ से लौह अयस्क का उत्खनन प्रारंभ करने हेतु पहाड़ के शीर्ष को समतल कर वहाँ बिजली से चलने वाली भारी मशीनें स्थापित की गई थीं। साथ ही बिजली की हाईटेन्शन-ओवरहेड लाइन भी वहाँ तक ले जायी गयी थी। कर्मचारियों को पहाड़ के ऊपर बने कार्यस्थल तक ले जाने के लिये पर्वत के स्वाभाविक ढाल में मामूली काट-छाँट कर एक अस्थायी मार्ग निर्मित किया गया था जो कि इतना ऊबड़-खाबड़, इतनी खड़ी चढ़ाई वाला हुआ करता था कि केवल फोर-व्हील-ड्राइव वाहन ही कर्मचारियों को लेकर इस पथ पर चढ़ते हुए सफलता पूर्वक गंतव्य तक पहुँचने की क्षमता रखते थे। उन दिनों पहाड़ के नीचे से ऊपर तक की दैनिक यात्रा अत्यंत ही रोमांचकारी हुआ करती थी। इस यात्रा के दौरान हर कर्मचारी अपने इष्ट देव को निरंतर याद करते चलता था। वाहन के भीतर इस अवधि में बड़ा ही धार्मिक वातावरण बन जाता था। मैं भी जीप में बैठते ही णमोकार मंत्र का जाप प्रारंभ कर देता था जो कि ऊपर पहुँचते तक एक सौ आठ बार तो हो ही जाता था। निश्चित ही, यह उसी जाप का प्रताप है जो मैं आज सर्वांग रूप से विद्यमान रहते हुए यह लेख लिखने की अवस्था में हूँ।

जिन विद्युत-अभियंताओं को किसी उद्योग में मेन्टेनेंस इंजीनियर के रूप में कार्य करने का दुर्योग प्राप्त हुआ है, वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि जब तक आप सामान्य कार्यावधि में अपने कार्यस्थल पर उपस्थित रहते हैं तब तक प्रायः हर मशीन ठीक से चलती है। पर ज्यों ही ड्यूटी खत्म होने पर आप वापिस घर लौटते हैं, मशीनों में ब्रेकडाउन होना प्रारंभ हो जाते हैं। घर का टेलीफोन बजने लगता है। पूछताछ शुरू हो जाती है। सवाल-जवाब चालू हो जाते हैं। प्रति पल होती उत्पादन-क्षति की याद दिलाई जाती हैं। मशीनों को तत्काल ठीक करवाने की हिदायत दी जाती है। घर के वातावरण में तनाव तैरने लगता है। बच्चे अंदर के कमरे में चले जाते हैं। आराम से एक कप चाय पीना भी दुश्वार हो जाता है। ऐसे में सिवा इसके कि घर का मोह त्याग कर पुनः वापिस कार्यस्थल पर चल दिया जाये, अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता। मेरे साथ ऐसा होना बहुत आम था। इसलिए टेलीफोन करते ही गैरेज से फौरन ही जीप घर भेज दी जाती थी जिसे ज्यादातर इकबाल भाई वाहन-चालक लेकर आया करते थे।

यहाँ से आगे बढ़ने के पूर्व, इकबाल भाई का थोड़ा परिचय दे देना समीचीन होगा। कहते हैं कि इकबाल भाई किशोरावस्था में ही किसी क्रांतिकारी संगठन से जुड़कर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े थे और किसी कांड में गिरफ्तार कर लिए जाने पर जेल भेज दिए गए थे। स्वतंत्रता के बाद, चूँकि तुरंत यह निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं हो पाया कि उनके जेल जाने का कारण स्वतंत्रता संग्राम से ही संबंधित था, वह रिहा तो कर दिए गए पर अन्य कोई सुविधा प्राप्त नहीं कर पाये। इस कारण उन्हें एक सर्कस में नौकरी करनी पड़ी, जहाँ पहले वो मौत के कुएँ में मोटर साइकिल चलाते थे फिर जीप कुदाने लगे। बाद में भिलाई स्टील प्लान्ट में नौकरी करने लगे। इकबाल भाई को अपने धर्म-निरपेक्ष नाम से बड़ा लगाव था। उन्हें इकबाल सिंह, इकबाल नाथ या इकबाल मियाँ कुछ भी कहा जा सकता था। वैसे यह उनका असली नाम नहीं था। यह तो उन्होंने अपने शायरी के शौक के कारण रख छोड़ा था। इकबाल भाई शायरी भी करते थे, इसकी जानकारी मुझे बड़ी ही विषम परिस्थिति में मिली।

हुआ यों कि मैं सदा की तरह एक ब्रेकडाउन अटेण्ड करने जा रहा था। इकबाल भाई जीप चला रहे थे। मैं सामने की सीट पर उनके बाजू में बैठा था। रात को चली थी। बिजली बंद होने के कारण चारों ओर अँधेरा था। जिस समय जीप, पहाड़ के सबसे कठिन चढ़ाव पर थी, इकबाल भाई ने सहसा जीप रोक दी। उनका दायाँ पाँव आधा ब्रेक पर और आधा एक्सीलेटर पर, ताकि इंजिन बंद न हो पाए। बाँया पाँव क्लच दबाए हुए, हाथ स्टीयरिंग पर और गर्दन मेरी ओर।

'क्या हुआ?' मैंने पूछा- 'जीप क्यों रोक दी?'

'एक मिसरा बन पड़ा है जैन साब। जरा गौर फरमाएँ।'

मैं हतप्रभ हो गया। ऐसी स्थिति में भी किसी को शायरी सूझ सकती है, यह मेरी कल्पना के बाहर की बात थी। मैंने बात को सम्हालते हुए कहा- 'पहले पहाड़ के ऊपर पहुँच लें फिर सुन लेता हूँ। ऐसे में तो समझ में भी नहीं आएगा।'

'कैसी बात करते हैं साब?' उन्होंने कहा - 'आपको समझ नहीं आएगा? भला ये कैसे हो सकता है? आप तो स्वयं कवि हैं।'

मेरे लिए यह अप्रत्याशित था। मेरे कवि होने की बात बहुत कम लोग जानते थे। दरअसल बात यह थी कि जब चीन से भारत का युद्ध हुआ था तब मैंने वीर रस की एक कविता लिखी थी जो संयोग से उस समय आकाशवाणी से प्रसारित भी हुई थी। बाद में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब पाकिस्तान के साथ युद्ध हुआ तो मैंने वही कविता एक पत्रिका में प्रकाशित करवा दी थी। कविता से मेरे रिश्ते का बस इतना ही इतिहास था जिसकी जानकारी मेरे कुछ सहपाठियों और रिश्तेदारों तक ही सीमित थी। इकबाल भाई को यह खबर कहाँ से मिली, यह मेरे लिए शोध का विषय था। बहरहाल, अपने आप को संयत रखते हुए मैंने कहा - 'इकबाल भाई, ऊपर पहुँच कर सुनना ही ठीक होगा। फिर एक मिसरा ही क्यों, पूरा शेर कहिएगा और भरपूर दाद लीजिएगा।'

'लेकिन तब तक तो बात जेहन से निकल जायेगी।' इकबाल भाई ने कहा।

'और जो आप जीप को यों ही कुछ देर और खड़ा रखें तो मेरी जान निकल जायेगी' मैंने कहा।

'सो आप बेफिकर रहें साब।' उन्होंने कहा- 'ऐसा कुछ नहीं होगा। आप शायद जानते नहीं, पहले मैं सर्कस में जीप चलाया करता था। फिलहाल तो हुजूर गौर फरमाएँ।'

अब मेरे पास इरशाद कहने के अलावा अन्य कोई रास्ता नहीं था। इकबाल भाई ने मिसरा सुनाया। मैंने बाकायदा 'बहुत खूब' कहा। उन्होंने ब्रेक पर से पैर हटा कर एक्सीलेटर पर दबाव बढ़ाया तथा झटके से क्लच छोड़ा। जीप पहले नीचे की ओर लुढ़की। फिर थम गई और फिर आगे चल पड़ी तब मेरी जान में जान आई।

इसके बाद जब कभी मुझे इकबाल भाई के साथ राजहरा पहाड़ पर जाने का संयोग होता तो मैं उनसे नीचे ही पूछ लेता कि कोई मिसरा तो नहीं बन पड़ा। वह मुस्करा कर दो-चार शेर कह डालते और तरोताजा महसूस करते हुए जीप चलाने लगते।

उपर्युक्त प्रकरण के उपरान्त, राजहरा वासियों में मेरे अफसर होने के बावजूद कवि होने की खबर फैल गई। लोगों की दृष्टि में मेरे प्रति अतिरिक्त सम्मान परिलक्षित होने लगा। खदान-प्रबंधन ने भी मेरे कवि होने को उचित महत्त्व देते हुए उस वर्ष विश्वकर्मा पूजा पर कव्वाली के बजाय अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन कराने का निर्णय लिया और मुझे यह दायित्व सौंपा कि इस कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिये मैं दो स्थानीय कवियों का चयन करूँ।

तब मुझे इस बात का कतई गुमान नहीं था कि इस जिम्मेदारी को लेकर मैं अपनी फजीहत कराने के रास्ते पर चल पड़ा था। इकबाल भाई की मदद से जब मैंने स्थानीय कवियों को मिलने के लिए बुलाया तो उमड़ पड़ी भीड़ को देखकर आश्चर्य चकित रह गया। कुल अढ़सठ कवि थे। राजहरा नगर की पच्चीस सौ की आबादी के मुकाबले कवियों की संख्या राष्ट्रीय औसत से बहुत ज्यादा थी। मानो राजहरा, खनिकर्मियों की नहीं, कवियों की बस्ती हो। लगा कि देश के ज्यादातर कवियों ने राजहरा में लौह अयस्क के उत्खनन का कार्य अपना लिया था। इस भीड़ में से दो कवियों का चुनाव उसी तरह चुनौती पूर्ण कार्य था जिस तरह कि आजकल हाईकमान का किसी राज्य के मुख्यमंत्री के चुनाव का होता है।

प्रबंधन के नियम कि 'चयन न केवल निष्पक्ष होना चाहिए बल्कि निष्पक्ष दिखना भी चाहिए' का पालन करते हुए मैंने स्वयं की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की जिसमें हिन्दी और उर्दू भाषा के शिक्षकों का समावेश किया और चयन प्रक्रिया प्रारंभ कर दी जो कि बाकायदा एक सप्ताह तक चली।

इस चयन कार्य में जो अनुभव हमें हुए उनका विस्तृत वर्णन तो यहाँ नहीं करूँगा, पर संक्षेप में इतना अवश्य कहूँगा कि तकरीबन हर कवि में अपनी कविताएँ निरंतर सुनाते रहने की ललक पागलपन की हद तक पायी गयी। एक बार जो चालू होता था वह बंद होने का नाम ही नहीं लेता था। ज्यादातर कविताओं में भावों का नितांत अभाव पाया गया। भाषा के मामले में बहुतेरे कवियों को व्याकरण के 'रिफ्रेशर-कोर्स' की आवश्यकता प्रतीत हुई। शायरों में कई के सीन-क़ाफ दुरुस्त नहीं थे। जो कवि सूर, तुलसी, मीर, कबीर, गिरधर या गालिब से प्रभावित थे वे अपने प्रेरणा स्रोत से बेहिचक काफी-कुछ जस का तस ग्रहण करते पाए गए। अनेक कवि छंद में मात्रा और तुक के बंधन पर विश्वास नहीं करते थे। जो नई कविता लिखते थे वे स्वयं उसका अर्थ बतला पाने में सक्षम नहीं पाए गए। इन सभी विषमताओं के बीच सही कवि को ढूँढ निकालना चारे के ढेर से सुई खोजने के समान था।

चयन प्रक्रिया के चलते भी, इकबाल भाई को उनके चयन का पूरा भरोसा था। अन्य कवि भी इसे लगभग तय मानकर ही चल रहे थे पर कोई कुछ बोलकर अपनी उम्मीदवारी खतरे में नहीं डालना चाहता था। लेकिन प्रक्रिया के सम्पूर्णता तक आते-आते इकबाल भाई का विश्वास हिलने लगा। चयन समिति के सदस्य जिस तरह मीन-मेख निकाल रहे थे, चुनाव के ईमानदारी से होने का अंदेशा हो रहा था। इकबाल भाई ने खुफिया तौर पर जब और खोज-बीन की तो उन्हें यह लगभग निश्चित ही जान पड़ा कि उनका नाम चयनित सूची में नहीं था। बस! फिर क्या था? असंतोष भड़क उठा। सभी कवि इकबाल भाई के नेतृत्व में चयन प्रक्रिया के विरुद्ध बोलने लगे। जिसका चुना जाना तय हो, जब वही चुनाव के तरीके के खिलाफ बोले तो भला कौन उसकी बात नहीं मानेगा? सभी कवि एक स्वर में चयनकर्ताओं की काबलियत पर संदेह करने लगे। कुछ तो यह कहते सुने गए कि अफसरों का तो काम ही कर्मचारियों में फूट डालना था। उन्हें आपस में लड़ाते रहना था और वो जो अफसरनुमा कवि चयन समिति के अध्यक्ष थे उन्हें कवि मानता कौन था? अफसरी का कविता से भला क्या सरोकार? फिर जो कवि सम्मेलन होगा उसमें सभी स्थानीय कवियों को कविता पाठ करने का अवसर क्यों नहीं मिलना चाहिए? बाहर से कवि बुलाने की दरकार ही क्या है? और यह भी कि यदि कवि सम्मेलन होगा तो सभी अढ़सठ कवि एक साथ मंच पर बैठेंगे, वरना कवि सम्मेलन नहीं होने दिया जावेगा।

इसके बाद जो हुआ वह औद्योगिक संस्कृति के अनुकूल ही था। कर्मचारी यूनियन बीच में कूद पड़ी। प्रबंधन के विरुद्ध नारे बाजी चालू हो गई। औद्योगिक विवाद खड़ा हो गया और इस प्रक्रिया में कवि सम्मेलन बैठ गया।

तब से मैंने कवि और कविता से दूर का भी संबंध न रखने की कसम खा ली। अब कोई व्यक्ति यदि परिचय देते हुए कहता है - 'मैं कवि हूँ।'

तो प्रत्युत्तर में मैं कहता हूँ - 'मैं बहरा हूँ।'

7/56 ए, मोतीलाल नेहरू नगर (पश्चिम)
भिलाई (दुर्ग) छत्तीसगढ़-490020

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संस्कृति एवं साहित्य का मुकुटमणि कर्नाटक और उसकी कुछ ऐतिहासिक श्राविकाएँ

प्रो. (डॉ.) श्रीमती विद्यावती जैन

पूर्वांकों में कर्नाटक की पाँच ऐतिहासिक श्राविकाओं के यशस्वी जीवन पर प्रकाश डाला गया था। प्रस्तुत अंक में अन्य ग्यारह श्राविकाओं की गौरव गाथा वर्णित की जा रही है।

विदुषीरत्न पम्पादेवी

हुम्मच के सन् 1147 ई. के एक शिलालेख में विदुषी रत्न पम्पादेवी का बड़े ही आदर के साथ गुणगान किया गया है। उसके अनुसार वह गंग-नरेश तैलप तृतीय की सुपुत्री तथा विक्रमादित्य शान्तर की बड़ी बहिन थी। उसके द्वारा निर्मापित एवं चित्रित अनेक चैत्यालयों के कारण उसकी यशोगाथा का सर्वत्र गान होता रहता था। उसके द्वारा आयोजित जिन-धर्मोत्सवों के भेरी-नादों से दिग्-दिगन्त गूंजते रहते थे तथा जिनेन्द्र की ध्वजाओं से आकाश आच्छादित रहता था।

कन्नड़ के महाकवियों ने उसके चरित्र-चित्रण के प्रसंग में कहा है कि - 'आदिनाथ चरित का श्रवण ही पम्पादेवी के कर्णफूल, चतुर्विध-दान ही उसके हस्त-कंकण तथा जिन-स्तवन ही उसका कण्ठहार था। इस पुण्यचरित्रा विदुषी महिला ने उर्व्वितिलक-जिनालय का निर्माण छने हुए प्रासुक जल से केवल एक मास के भीतर कराकर उसे बड़ी ही धूमधाम के साथ प्रतिष्ठित कराया था।

पम्पादेवी स्वयं पंडिता थी। उसने अष्टविधार्चन-महाभिषेक एवं चतुर्भक्ति नामक दो ग्रन्थों की रचना भी की थी।

पट्टरानी शान्तलादेवी

श्रवणबेलगोल के एक शिलालेख में होयसल वंशी नरेश विष्णुवर्द्धन की पट्टरानी शान्तलादेवी (12वीं सदी) का उल्लेख बड़े ही आदर के साथ किया गया है। वह पतिपरायण, धर्मपरायण और जिनेन्द्र-भक्ति में अग्रणी महिला के रूप में विख्यात थी। संगीत, वाद्य-वादन एवं नृत्यकला में वह निष्णात थी। आचार्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव इसके गुरु थे।

शान्तला ने श्रवणबेलगोल के चन्द्रगिरि के शिखर पर एक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल जिनालय का निर्माण करवाया था, जिसका नाम 'सवति-गन्धवारण-वसति' रखा गया। सवतिगन्धवारण का अर्थ है - सौतों (सवति) के लिए मत्त हाथी। यह शान्तला देवी का एक उपनाम भी था। इस जिनालय में सन् 1122 ई. के लगभग भगवान शान्तिनाथ की मनोज्ञ प्रतिमा स्थापित की गई थी।

इस मन्दिर में प्रतिष्ठापित जिनेन्द्र के अभिषेक के लिये उसने पास में ही गंग समुद्र नामक एक सुन्दर बारामासी जलाशय का भी निर्माण कराया था। साथ ही उसने नित्य देवार्चन तथा जिनालय की भावी सुव्यवस्था तथा सुरक्षा आदि के निमित्त अनेक गाँवों की जमीदारी भी उसके नाम लिख दी थी। उक्त बसतिका के तृतीय स्तम्भ पर एक शिलालेख भी उत्कीर्ण है जिसमें उक्त रानी की धर्म-परायणता की विस्तृत प्रशंसा करते हुए उसे अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया है। उसमें उल्लिखित उसके कुछ विशेषण निम्न प्रकार हैं -

अभिनव रुक्मिणी, पातिव्रत प्रभाव-प्रसिद्ध सीता, गीत-वाद्य सूत्रधार, मनोज-राज-विजय-पताका, प्रत्युत्पन्न-वाचस्पति, विवेक-बृहस्पति, लोकैक-विख्यात, भव्य-जन-वत्सलु, जिनधर्म-निर्मला, चतुःसमय समुद्धरण, सम्यक्त्व चूडामणि आदि-आदि।

आचल देवी

आचल देवी (12वीं सदी) के जीवन में एक बड़ी भारी विसंगति थी। उसका पति चन्द्रमौली शैवधर्म का उपासक था, जबकि वह स्वयं जैनधर्मानुयायी, किन्तु दोनों के जीवन-निर्वाह में कोई कठिनाई नहीं आई, क्योंकि स्वभावतः दोनों ही सहज, सरल एवं समन्वयवादी थे। चन्द्रमौली होयसल नरेश वीर बल्लाल द्वितीय का महामन्त्री था और राज्य-संचालन में अत्यंत कुशल एवं धीर-वीर।

अपने पति की सहमति पूर्वक आचलदेवी ने सन् 1182 के दशक में श्रवणबेलगोल में अत्यंत भव्य एवं सुरम्य विशाल पार्श्व-जिनालय का निर्माण करवाया था, जिसकी प्रतिष्ठा देशीगण के नयकीर्ति सिद्धान्तदेव के शिष्य बालचन्द्र मुनि ने की थी। यह जिनालय 'अक्कनवसदि' के नाम से प्रसिद्ध है।

कहा जाता है कि श्रवणबेलगोल में उक्त वसदि ही एक ऐसा मन्दिर है, जो होयसल कला का एक अवशिष्ट तथा उत्कृष्ट कला का नमूना है। इस वसदि की व्यवस्था के लिये स्वयं चन्द्रमौलि मंत्री ने अपने नरेश से विशेष प्रार्थना कर कम्मेयनहल्लि नामक कर-मुक्त ग्राम प्राप्त किया था और उसे उक्त मंदिर की व्यवस्था के लिये सौंप दिया था।

जिनेन्द्र भक्त लक्ष्मी देवी

जिस प्रकार गंग-नरेशों ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में बहुआयामी कार्य किये, विद्यापीठों की स्थापना की, जैनाचार्यों को लेखन-कार्य हेतु सुविधा सम्पन्न आश्रय स्थल निर्मित कराये, उसी प्रकार उनकी महारानियों ने भी उनका अनुकरण कर नये-नये आदर्श प्रस्तुत किये।

ऐसी महिलाओं में से सेनापति गंगराज की पत्नी लक्ष्मी (12वीं सदी) का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता। पति-परायणा होने के साथ-साथ वह जिनवाणी-रसिक एवं जिनेन्द्रभक्त भी थी। उसे अपने पति की 'कार्यनीतिवधू' और 'रणेजयवधू' कहा गया है। एक शिलालेख के अनुसार उसने श्रवणबेलगोल में 'एरडुकट्टे वसदि' का निर्माण कराया था। वह अपनी सासु-माता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोचव्वे की बड़ी भक्त थी। अतः उसकी स्मृति में भी उसने कत्तले-वसदि एवं शासन वसदि का निर्माण करवाया था। इसके साथ-साथ उसने अपने भाई बूच एवं बहिन देमेति की स्मृति में तथा जैनाचार्य मेघचन्द्र की स्मृति में कई शिलालेखों को उत्कीर्णित करवाया था।

वह जीवन भर उदारतापूर्वक चतुर्विधदान देती रही। यही कारण है कि सन् 1121 ई. के एक शिलालेख में उसकी यशोगाथा में एक प्रश्न पूछा गया है कि - 'क्या अन्य महिलाएँ अपने चातुर्य, सौन्दर्य, जिनभक्ति एवं उदारता में गंगराज की धर्मपत्नी लक्ष्मीयाम्बिके की समानता कर सकती है?

कठोर तपस्विनी पाम्बव्वे

कडूर दुर्ग मुख प्रवेश-द्वार के एक स्तम्भ पर 10वीं सदी की एक राजमहिषी पाम्बव्वे का उल्लेख हुआ है, जिसने अपने राज्य-वैभव के सुख भोगों को असार मानकर आर्यिका व्रत की दीक्षा धारण कर ली थी और लगातार 20 वर्षों तक कठोर तपश्चर्या की थी।

एक सुप्रसिद्ध राजकुल में जन्मी, पली तथा बड़ी हुई सुकुमार एवं सुन्दर नारी का इस प्रकार का सर्वस्व त्याग और कठोर-तपस्या का यह एक अनुकरणीय आदर्श उदाहरण है। वह राजा भूत्तुंग की बड़ी बहिन थी।

राजकुमारी हरियव्वरसि

राजकुमारी हरियव्वरसि अथवा हरि-यल देवी (12वीं सदी) होयसल वंशी सुप्रसिद्ध नरेश विष्णुवर्धन की राजकुमारी थी। हन्तूरू नामक स्थान के एक जिनालय से प्राप्त सन् 1130 के एक शिलालेख से ज्ञात होता है, कि उसने अपने श्रद्धेय गुरु गण्डविमुक्त-सिद्धान्तदेव की प्रेरणा से स्वद्रव्य से हन्तियूर नामक नगर में एक विशाल भव्य कलापूर्ण जिनालय बनवाया था। जिसका अग्रकलश मणि-रत्नों से जटित था। उस जिनालय की व्यवस्था के लिये उसने अनेक गाँव कर-मुक्त कराकर उसे दान में दिये थे।

उक्त शिलालेख में उक्त राजकुमारी की विस्तृत प्रशस्ति में उसकी तुलना सती सीता, वाग्देवी सरस्वती, रुक्मिणी आदि से की गई है और साथ ही उसमें उसे पतिपरायणा, चतुर्विधदान देने में तत्पर, विदुषी तथा अर्हत-परमेश्वर के चरण-नख-मयूख से जिसका ललाट एवं पलक-युग्म सदैव सुशोभित होते रहते हैं ऐसा लिखकर, उसकी प्रशंसा की गई है।

चट्टल देवी

शान्तर-राजवंश की राजकुमारी चट्टल देवी (11वीं सदी) प्रारंभ से ही जैनधर्म-परायणा थी। उसका विवाह पल्लव नरेश काडुवेट्टी के साथ सम्पन्न हुआ था। उसने शान्तरों की राजधानी पोम्बुच्चपुर में अनेक भव्य जिनालयों का निर्माण कराया था।

इसके अतिरिक्त उसने भक्तों तथा आम जनता की आवश्यकताओं के अनुसार अनेक स्थलों पर जैन मंदिर, वसतियाँ, तालाब तथा साधुओं के लिये गुफाएँ बनवाई और आहार, औषध, शिक्षा तथा आवास-दानों की भी व्यवस्थाएँ की थीं। इस कारण उसे जैन समाज में श्रेष्ठ-दानशीला नारियों में अग्रिम स्थान प्राप्त है।

राजकुमारी कुन्दव्वे

तंजौर के 11वीं सदी के पूर्वार्द्ध के एक अभिलेख के अनुसार राजराज चोल की पुत्री राजकुमारी कुंदव्वे (10वीं सदी) बड़ी ही धर्मात्मा और जिनभक्त थी। वह बेंगी के चालुक्य-नरेश विमलादित्य की महारानी थी।

इसने तिरुमलै के पर्वत-शिखर पर एक 'कुन्दब्बे-जिनालय' का निर्माण करवाया था और उसकी व्यवस्था हेतु कई ग्रामों को दान में दिया था। यह भद्रपरिणामी महिला अपने अन्तिम समय तक भ. महावीर के सर्वोदयी जैन आदर्शों की संवाहिका बनी रही और जीवन पर्यन्त सुपात्रों को उदारतापूर्वक दान देती रहीं।

मालल देवी

कुन्तल देश के वनवासी क्षेत्र के कदम्ब-शासक कीर्तिदेव की अग्रमहिषी मालल देवी जिनेन्द्र भक्त तथा गरीबों के प्रति अत्यन्त दयालु थी। एक शिलालेख से विदित होता है कि उसने सन् 1077 ई. में कुप्यटूर में एक कलात्मक भव्य पार्श्वनाथ-चैत्यालय का निर्माण कराया था, जिसकी प्रतिष्ठा पद्मनन्दि सिद्धान्तदेव के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुई थी। इस जिनालय के लिये मालल देवी ने राज्य से एक सुन्दर कर-मुक्त भूखण्ड प्राप्त किया था।

चतुर प्रशासिका जक्कियव्वे

जक्कियव्वे (10वीं सदी) की यह विशेषता है कि वह विदुषी श्राविका, पारिवारिक सद्गृहिणी तथा जिनभक्ता होने के साथ-साथ एक कुशल प्रशासिका भी थी। 11वीं सदी के आसपास के उत्कीर्ण एक शिलालेख (सं. 140) में उसकी यशोगाथा का वर्णन मिलता है। उसके पति का नाम नागार्जुन था। राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय (कन्नरदेव) उस परिवार से इतने प्रसन्न थे कि जक्कियव्वे के पति नागार्जुन के अक-स्मात् स्वर्गवास हो जाने पर, उसने उसे नागरखण्ड नामक एक जटिल प्रक्षेत्र की प्रशासिका के रूप में नियुक्त कर दिया था।

जक्कियव्वे एक दूरदृष्टि-सम्पन्न एवं कष्ट-सहिष्णु किन्तु गम्भीर विदुषी महिला थी। उसके बहुआयामी व्यक्तित्व की सूचना इसी से मिलती है कि वह एक ओर तो राज्य-प्रशासन का कुशलतापूर्वक संचालन करती थी और दूसरी ओर परिवार का एवं समाज का संचालन। उसने जिनेन्द्रभक्तिवश एक विशाल जैन प्रतिमा की स्थापना कर जिनधर्म की पताका फहराई थी।

स्नेहमयी सरस्वती अम्मा

इन प्रसंगों में हम मातुश्री सरस्वती अम्मा को भी विस्मृत नहीं कर सकते, जिनकी कोख से 20वीं सदी को सार्थक कर देने वाले राष्ट्रसन्त आचार्यश्री विद्यानन्द जी का जन्म हुआ। विद्यानन्द जी जब शिशु अवस्था में थे तो उनकी माता कन्नड़-लोरियाँ सुना-सुनाकर उन्हें हँसा-हँसा कर लोट-पोट कर दिया करती थीं तथा निरन्तर मनौती मनाया करती थीं कि वह प्रगति कर समाज में गौरवपूर्ण उच्चतम स्थान प्राप्त करें।

विद्यानन्द जी के बचपन का नाम सुरेन्द्र था। प्रारंभ से ही वह नेता टाइप का छात्र था। छात्रावस्था में वह छात्रों के ऊपर ही रौब नहीं झाड़ता था, बल्कि जो शिक्षक अनियमित थे, वे भी उससे भयभीत रहा करते थे। वह स्वतन्त्रता-आन्दोलन में भी भाग लेता, इस कारण पुलिस तथा गाँव के लोग अंग्रेज शासकों के विरोध में उसके उग्रवादी नारों तथा करतूतों के विषय में उसकी तरह-तरह की शिकायतें लेकर उसके घर आते। पिता तो उसको कभी-कभी डाँट-फटकार पिलाते रहते, किन्तु उसकी भद्रस्व-भावी स्नेहवत्सला माता कभी भी उन्हें डाँटती तक न थी।

एक बार पिता के कहने से सुरेन्द्र ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीविकोपार्जन का मन बनाया। कहीं बाहर जाने की समस्या आई, तो सभी ने उन्हें पूना जाने की सलाह दी। पूना में उनकी ननिहाल थी। जब वे अपने बैग में आवश्यक वस्त्रादि लेकर प्रस्थान करने लगे, उस समय का दृश्य बड़ा ही हृदय-विदारक हो गया। माँ-बेटे दोनों ही रुदन करने लगे। उनके कण्ठ इतने हिलहिला उठे कि दोनों की बोलती ही बंद हो गयी। माँ चाहती थी कि बेटा घर से बाहर न जाये, किन्तु उसे रोकना क्या उसके लिये सम्भव था? माँ ने ललाट पर रोरी का तिलक लगाया, उस पर अक्षत चिपकाये, जेब खर्च दिया, रोते-रोते अनेक प्रकार के आदेश-उपदेश दिये, नाश्ते का बैग पकड़ाया और मुँह छिपाकर फफक-फफक कर रुदन करने लगी। उस समय का कारुणिक दृश्य कैसा रहा होगा? भुक्तभोगी ही इसका अनुभव कर सकता है।

नौकरी खोजने में उनके मामा ने बड़ा प्रयत्न किया। संयोग से उन्हें वहाँ की आर्डिनेंस-फैक्टरी (आयुधशाला) में 47-1/2 रुपये मासिक की नौकरी मिल गई और वहाँ के नियमों के अनुसार गले में परिचय-पट्टिका डालकर कार्यव्यस्त हो गये। अंग्रेज अफसर 'शाबाश सुरिन्दर, शाबाश सुरिन्दर टुम अच्छा काम करता हटा' कहकर उसकी बहुत प्रशंसा करने लगे। माँ को जब यह समाचार मिला, तो वह इतनी प्रमुदित हुई कि मानों उसके लिये बड़ा भारी राज्य मिल गया हो।

माता की मनोकामना थी कि वह शीघ्र ही आयुधशाला का बड़ा अफसर बने, किन्तु सुरेन्द्र तो स्वतन्त्र विचारों का युवक था। भविष्य के गर्भ में कुछ और ही था।

एक दिन ऐसा आया कि उसने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली और निर्मम होकर घर-बार सबको बिलखता हुआ छोड़कर तपोवन की ओर चल दिया।

किन्तु इस पुण्य-प्रसंग पर विवेकशील माता सरस्वती अम्मा रोई नहीं। उसने गहन विचार किया, धैर्य धारण किया और अपने प्रिय पुत्र को आशीर्वाद दिया- 'बेटे, तुम जहाँ भी रहो, सदैव हँसते रहो, विहँसते रहो, प्रसन्न रहो, अपने संकल्प को पूरा करो, धवल-यश के भागी बनो। मेरा वात्सल्य भरा यही आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा।'

धन्य है यह कर्नाटक की पुण्य भूमि और उस पर जन्म लेने वाली वह प्रातः स्मरणीया माता, जिसने शुभ-मुहूर्त में ऐसे पुत्ररत्न को जन्म दिया। उस माता को अनेकशः प्रणाम, जिसने अपने पुत्र को पावन-संस्कार दिये। आज यह उसी का सुफल है कि उसका वही बेटा महामनीषी राष्ट्र सन्त आचार्य विद्यानन्द के नाम से सर्वत्र विख्यात है।

इस प्रकार प्रस्तुत निबंध में मैंने कर्नाटक की कुछ जैन यशस्विनी सन्नारियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। जैन संस्कृति एवं इतिहास के क्षेत्र में उनके बहुआयामी संरचनात्मक योगदानों के कारण उन्होंने जैन समाज को जो गौरव प्रदान किया, वह पिछले लगभग 1300 वर्षों के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है, जिसे कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकेगा। आवश्यकता इस बात की है कि यदि कोई स्वाध्यायशीला विदुषी प्राध्यापिका इस धैर्यसाध्य क्षेत्र में विश्व विद्यालय स्तर का विस्तृत शोध कार्य करे, तो मध्यकालीन जैन महिलाओं के अनेक प्रच्छन्न ऐतिहासिक कार्यों को तो प्रकाश-दान मिलेगा ही, भावी पीढ़ी को भी अपने जीवन को सार्थक बनाने हेतु नई-नई प्रेरणाएँ मिल सकेंगी।

महाजन टोली नं. 1,
आरा-802301 (बिहार)

बहुत उथली हो रही हैं सोच की गहराइयाँ

अशोक शर्मा

बहुत उथली हो रही हैं सोच की गहराइयाँ
आदमी को खा रही हैं आज फिर परछाइयाँ।

1

सोच ने जिस आदमी को शब्द देकर दी कथाएँ
सोच अब उस आदमी को हाशिये पर ला रही हैं
हाशिये की एक दुनिया एक जंगल को समेटे
इस तरफ से, उस तरफ से, हर तरफ से आ रही है
दूर तक घिरने लगी हैं आज फिर वीरानियाँ॥

2

आदमी की सोच देखो हाथ में बारूद लेकर
अब मकानों की छतों से, खिड़कियों से झाँकती है
घुट रही हैं फिर हवाएँ उठ रहा काला धुँआ
समझदारी एक वृद्धा बीमार सी, फिर खाँसती है
पीतवर्णी हो रही हैं अब तरुण-अरुणाइयाँ॥

3

सोच ने इस आदमी को क्यों तराशा सोचता हूँ
आदमी का डर समेटे आदमी डरने लगे हैं
इस जगह से उस जगह तक फैलकर नंगे कथानक
आज गँदला हर नदी के नीर को करने लगे हैं
ढूँढती अमराइयों को आज फिर अमराइयाँ॥

अभ्युदय निवास, 36-बी, मैत्री विहार,
सुपेला, भिलाई (दुर्ग) छत्तीसगढ़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृहिणी और सच्चा साथी रसोईघर

कु. समता जैन

गृहिणी का अधिकतम समय उसके रसोईघर में ही गुजरता है। प्रत्येक गृहिणी यह प्रयास करती है कि उसके द्वारा बनाया गया भोजन स्वादिष्ट और पाचक हो तथा घर में सभी लोग उसकी तारीफों के पुल बाँधे। कभी-कभी रसोईघर में जल्दी-जल्दी में कोई चीज जल जाती है, तो कोई कच्ची रह जाती, कभी कोई चीज मिलती ही नहीं है, तो कोई चीज खत्म हो जाती है जिससे घर के सभी सदस्य झल्ला उठते हैं इसके लिये आवश्यकता है कि शुरु से सतर्क रहें। रसोई में सभी आवश्यक वस्तुओं को सजा-सँवार कर रखें। सब वस्तुओं को सुव्यवस्थित ढंग से रखें। इसके लिये निम्नलिखित बातों का आवश्यक रूप से ध्यान रखना चाहिये।

1. सबसे पहले महीने भर में काम आने वाली वस्तुओं की लिस्ट बनाकर उन्हें मँगा लें और उन्हें उचित डिब्बों में स्टोर करके रखें। यदि डिब्बे पारदर्शक हों तो अच्छा है, जिससे प्रत्येक डिब्बा खोलने की आवश्यकता न पड़े। बाहर से ही दिखने पर प्रत्येक सामान लिया जा सके और यदि डिब्बे पारदर्शक नहीं है तो प्रत्येक डिब्बे पर उसमें रखी वस्तु का लेबल लगा दें और डिब्बों को अपनी जरूरत के मुताबिक क्रमानुसार रखें।

2. रसोई में आवश्यक बर्तनों का होना आवश्यक है तथा उन्हें व्यवस्थित ढंग से जमाकर रखना चाहिये जिससे किसी भी बर्तन को ढूँढने में परेशानी न हो। यदि घर में मिक्सी, फ्रिज आदि है तो उन्हें एक निश्चित स्थान पर रखें जिससे श्रम व समय की बचत होती है तथा बची हुई वस्तुओं का आसानी से संरक्षण किया जा सकता है।

3. एक पेंसिल व डायरी रसोई में जरूर लटका कर रखें और जब भी कोई वस्तु समाप्त हो उसमें नोट कर लें जिससे आपको बाजार जाते समय माथा-पच्ची करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी कि कौन-कौन सी वस्तुयें समाप्त हो गई हैं, जिन्हें बाजार से लाना हैं।

4. रसोई घर में एक कैलेण्डर अवश्य ही टाँगना चाहिये। जिस पर जब दूध न आये, कम आये अथवा गैस सिलिण्डर लगाने का दिन आदि बातें उन तारीखों पर नोट करें।

5. खाना बनाते समय खाना बनाने की सभी आवश्यक वस्तुयें चकला, बेलन, चिमटा, चीनी, नमक, घी मसाले आदि इकट्ठा करके रख लें। फिर बाद में गैस जलायें, जिससे गैस व समय की बचत होती है।

6. सब्जी, दाल-चावल हमेशा प्रेशर कुकर अथवा चौड़े मुँह के बर्तन में ही बनाना चाहिये। जिससे गैस की बचत होती है।

7. सब्जियों के छिलकों को फेंकना नहीं चाहिये, उनमें से कई सब्जियों के छिलके की सब्जियाँ बनती हैं तथा कुछ चेहरे पर घिसने से त्वचा में निखार आता है।

8. खाना बनाने के लिये आप अपने घर के सभी सदस्यों की सलाह व पसंद का ख्याल अवश्य रखें और क्या खाना बनाना है इसकी प्लानिंग पहले से ही कर लें।

9. प्लानिंग से पहले आप मौसम में प्राप्त होने वाली सब्जियों व खाने की पौष्टिकता का अवश्य ध्यान रखें।

10. भोजन की तैयारी इस प्रकार करें कि दोपहर के भोजन में बची हुई सामग्रियों का उपयोग, खासतौर से बची हुई सब्जियों का प्रयोग शाम के लिये नये रूप में कर सकें।

बहनें यदि उपर्युक्त सुझावों को अपनायेंगी तो एक आदर्श गृहिणी के रूप में उनका यश बढ़ेगा। आजकल आधुनिक गृहिणी कम समय में भोजन बनाना चाहती हैं तथा परिवार को भी खुश रखना चाहती है, अतः वह इन सुझावों से श्रम एवं समय दोनों की बचत कर सकती हैं और परिवार को भी प्रसन्न रख सकती है और जो नारी ऐसा करती है, उसके बारे में कहा है:-

''नारी गुणवती धत्ते, सृष्टिरग्रिमं पदं।''

अगर नारी गुणवान हो, सुशिक्षित हो, सुसंस्कारित हो, तो वह सृष्टि में अग्रिम पद को धारण कर सकती है।

'जीवन सदन' सर्किट हाउस के पास,
शिवपुरी (म.प्र.)

वाग्भारती पुरस्कार हेतु नाम आमंत्रित

वाग्भारती पुरस्कार हेतु नाम 28 फरवरी तक सादर आमंत्रित हैं। डॉ. सुशील जैन, मैनपुरी द्वारा स्थापित, इस पुरस्कार के लिए अधिकतम आयु 40 वर्ष है। युवा विद्वान दशलक्षण पर्व पर प्रवचनार्थ अवश्य जाते हों, श्रमण परम्परा आर्ष मार्ग में पूर्ण आस्था रखते हुए संयमी जीवन के साथ निष्काम भाव से धर्म सेवा में तत्पर हों। वर्ष 2000 हेतु जो प्रविष्टियाँ प्राप्त हुई थीं, उनमें से पुरस्कार हेतु कोई नहीं चुना जा सका। अतः यदि योग्य पात्र प्राप्त हुए तो इस वर्ष दो पुरस्कार वर्ष 2000 व वर्ष 2001 के लिए दिये जा सकेंगे। जो पूर्व वर्षों में अपना नाम भेज चुके हैं वे पुनः न भेजें। विद्वान स्वयं, अन्य विद्वान, संस्थायें, समाज भी नाम प्रस्तावित कर सकती हैं। जन्म-तिथि, शिक्षा, परिचय, प्रवचनों का विवरण आदि पूर्ण जानकारी के साथ नाम भेजें।

(डॉ. सौरभ जैन)
मंत्री वाग्भारती ट्रस्ट, C/o जैन क्लीनिक
सिटी पोस्ट आफिस के सामने
मैनपुरी (उ.प्र.) पिन-205001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्मरण

सच्ची दीपावली

ब्र. त्रिलोक जैन

युगों युगों से भारतीय वसुन्धरा मंगल दीपों से आलोकित है। कारण चाहे कुछ भी रहा हो, चाहे तो प्रभु महावीर ने अष्ट कर्मों पर विजय प्राप्त कर मुक्तिरमा का वरण किया हो, चाहे मर्यादा पुरुषोत्तम राम रावण पर विजय प्राप्त कर लौटे हों। दीप तो जले ही हैं। दीपावली की रात एक ऐसी पावन रात है जहाँ आकाश में चाँद, तारें तो धरती पर धृत दीप प्रकाश की मनोहारी छटा बिखेरकर मानों आकाश से प्रतिस्पर्धा ही करते हों। कारण कोई भी हो मानव जाति आमोद-प्रमोद में लीन हो ही जाती है पर जिस नगर, गाँव में कोई संत पुरुष विराजमान हों तो होली, दीवाली का परमानंद एक साथ बरस उठता है। मुनि श्री करुणामूर्ति क्षमासागर जी अपने गुरुवर विद्यासागर जी की आज्ञा से अपना प्रथम चातुर्मास गढ़ाकोटा की पावन भूमि पर कर रहे थे, तभी एक दिन चातुर्मास की समापन बेला के पूर्व कुछ श्रावकों ने महाराज से निवेदन किया कि महाराजश्री दीपावली कैसे मनायें?

प्रश्न में कुछ गहरी प्यास देखकर मुनिश्री ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए पूछा इसके पहले कैसे मनाते थे? सुनकर श्रावक बोले- आपको क्या बतायें महाराज जी, बस अपने स्वार्थ की चहारदीवारी में ही हमारी दीपावली मन जाती है। घर पर पकवान बनते हैं, तो इष्ट मित्रों के साथ मिल-बाँटकर खाते है और रात्रि में अपने घर को दीपों से प्रकाशित करते हैं। इतना कहकर श्रावक मुनिश्री की ओर देखने लगे तो मुनिश्री बोले बस इतना ही? तो श्रावक बोले महाराज एक बात भूल गये। हम लोग परमात्मा के मंदिर में भी एक दीप प्रकाशित कर आते हैं। ऐसा कहते हुए श्रावक मुस्करा रहे थे जैसे लंका जीत ली हो। तभी मुनिश्री बोले- भैया इतना तो सभी कर लेते हैं। जहाँ पर दीप पहले से जल रहे हैं वहाँ एक दीप और रख दिया तो क्या? अरे, दीप ही रखना हो तो वहाँ रखो जहाँ अन्धकार का साम्राज्य दीपावली की पावन रात में भी स्थापित है। अरे, पकवान यदि खिलाने हैं तो उन्हें खिलाओ जिनके पेट में रोटी भी न गई हो। अरे, आज की रात तो वहाँ उजेला करो जहाँ अंधेरा हो। मुनिश्री की करुणामय वाणी को सुनकर श्रावक श्रद्धा से नतमस्तक हो गये। सूर्य अस्ताचल की ओर, श्रावक अपने घर की ओर। रात्रि सघन हो इससे पहले हजारों लघु दीप झिलमिल प्रकाश बिखेरने लगे। श्रावकगण बस निकल पड़े अन्धेरे की खोज में तो पूरे नगर में पाँच ऐसे स्थान पाये, जहाँ अन्धकार का साम्राज्य व्याप्त था।

लोग चुपचाप लेटे थे, ना कोई उमंग, ना कोई उल्लास, बस समझो उदास। मायूस फीकी-फीकी थी उनकी दीवाली की रात। तभी उनके करीब किया किसी ने प्रकाश,, तो उठकर बैठ गये। उन्हें लगा, उनके पास कोई देवता खड़ा है, पर गौर से देखा तो आदमी ही अपने देवत्व के साथ खड़ा था। दीप जलाने के बाद जब मिठाई का पैकेट उन गरीबों को दिया तो देने वाले और लेने वाले दोनों की आँखों में आँसू थे. उन गरीबों के मुख से हजारों दुआएँ निकल रही थीं, तो श्रावकों की आँखों से आनंद के आँसू। श्रावक जब चलने लगे तो गरीबों के मुख से बरबस निकल पड़ा 'भगवान तुम्हारा भला करें'। श्रावक जब अपने अभियान में सफल होकर मुनिश्री के पास पहुँचे तो नमोस्तु करते हुए गद्गद् कण्ठ से बोले- 'महाराज हम धन्य हो गये।' आज हमे लगता है जीवन सफल हो गया। हमको हमारा मानव धर्म मिल गया। तो मेरे प्रिय पाठको, धन्य हैं वो गाँव जहाँ मुनिश्री के पावन चरण पड़े और दीवाली की पावन रात में गरीबों के अन्धेरे जीवन में उजाले हुए।

यदि अपने जीवन में भी हमें वही आनन्द लूटना है दूसरों की अंधेरी दुनिया में रोशनी भरना है तो फिर क्यों न बढ़ चलें अपने नगर के चारों ओर कहीं किसी कोने में, जो अपने अंधेरों में जिन्दगी के गम लिये पड़े हो, उनकी मदद के लिये उनके अंधेरे जीवन में प्रकाश भरने। चलो चलें, इसी में जिनशासन की सच्ची प्रभावना होगी और मिलेगा जीवन का सच्चा आनंद। सचमुच दूसरों की मदद का आनंद अद्भुत होता है। आओ, हम सब भी इस जीवंत कहानी से प्रेरणा लें। इस अद्भुत आनंद को लूटें। और सिद्ध करें कि हम महावीर और राम के सच्चे उपासक हैं, करुणा, दया, प्रेम, वात्सल्य हमारा धर्म है जो कि सबके लिये अंधेरे जीवन में दिव्य प्रकाश है।

दीपावली एवं भगवान महावीर की निर्वाण बेला में -

वर्णी दि. जैन गुरुकुल, पिसनहारी की मढ़िया जबलपुर-3 (म.प्र.)

चुनाव सम्पन्न

दिगम्बर जैन मंदिर महासंघ जयपुर की कार्य कारिणी समिति के त्रिवर्षीय चुनाव दिनांक 16 सितम्बर व 2 अक्टूबर 2001 को श्री ताराचंद जी जैन एडवोकेट व श्री कुन्दनमल जी बगड़ा ने सम्पन्न करायें। जिसमें श्री रामचंद्र कासलीवाल अध्यक्ष, श्री ज्ञान चंद खिन्दूका व श्री कुबेर चंद्र काला उपाध्यक्ष, श्री अनूप चंद्र न्यायतीर्थ मंत्री, श्री विपिन कुमार बज संयुक्त मंत्री एवं श्री लाल चंद्र मुशरफ कोषाध्यक्ष चुने गये हैं। जबकि कार्य-कारिणी के सदस्य के रूप में सर्वश्री भागचन्द जैन रस्सी वाले, श्री देवेन्द्र कुमार साह, श्री बाबूलाल सेठी, श्री राजमल छाबड़ा, श्री रतन लाल झागवाले, श्री प्रवीण चन्द्र छाबड़ा, श्री माणक चन्द मुशरफ, श्री बलभद्र कुमार जैन, श्री पूनम चन्द छाबड़ा, श्री प्रकाश चन्द्र दीवान, श्री राजेन्द्र कुमार लुहाड़िया, श्री महेन्द्र कुमार पाटनी, श्री योगेश कुमार टोडरका, श्री ताराचन्द पाटनी, श्री ज्ञानचन्द ठोलिया, श्री महावीर कुमार रारा एवं श्री प्रकाश चन्द जैन (बासखो) निर्वाचित हुए।

अनूप चन्द न्यायतीर्थ, मानद मंत्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

देश के 224 मेधावी जैन छात्रों का सम्मान

श्रीमती विमला जैन, एच.जे.एस.
जिला एवं सत्र न्यायाधीश

शिवपुरी नगर में चातुर्मास कर रहे पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी एवं मुनि श्री भव्य सागर जी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से उनके सान्निध्य में 28 अक्टूबर 2001 को देश के 14 राज्यों के 224 मेधावी जैन छात्र/छात्राओं का सम्मान किया गया। मैत्री समूह द्वारा आयोजित इस समारोह की भव्यता एवं गरिमा अत्यधिक मनोरम, अपनत्वपूर्ण, आकर्षक एवं प्रभावी थी। समारोह की मुख्य अतिथि आई.आई.टी. दिल्ली में अँग्रेजी की प्रोफेसर डॉ. श्रीमती सुनीता जैन थीं। डॉ. जैन 45 से अधिक हिन्दी तथा अँग्रेजी भाषा की पुस्तकों की विश्वप्रसिद्ध लेखिका हैं। समारोह के संयोजक श्री सुरेश जैन आई.ए.एस. भोपाल थे।

मैत्री समूह तथा जैन समाज शिवपुरी द्वारा आयोजित इस प्रतिभा सम्मान समारोह में देश भर के 75 प्रतिशत से 94 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले 224 मेधावी जैन विद्यार्थियों को सम्मानित किया गया। देश में इस तरह का यह पहला और अनूठा कार्यक्रम था। इस सूची में 6 मेधावी विद्यार्थी ऐसे थे जिन्होंने एक-एक विषय में सौ में से सौ अंक हासिल किए। श्री संदीप पी. बैंगलोर ने गणित में, अंकित नरेन्द्र कुमार जैन टीकमगढ़, कु. स्फूर्ति एन. बैंगलोर ने भौतिक शास्त्र में, श्री दीपक कुमार जैन आगरा ने बॉयोलॉजी में, श्री हेमंत चन्द्रकॉतिभाई कोटाडिया, अहमदाबाद एवं कु. बीजल उत्तमभाई शाह, अमहदाबाद ने व्यापारिक गणित में शत प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं।

भगवान महावीर की 2600वीं जन्म जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित देश के मेधावी जैन छात्र-छात्राओं के भाव-भीने सम्मान का मुख्य आयोजन तात्याटोपे प्रांगण में सम्पन्न किया गया। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में देश के सुप्रसिद्ध उद्योगपति एवं समाज सेवी श्री पन्नालाल बैनाड़ा आगरा, इतिहासविद डॉ. सुधा मलैया भोपाल, 'ए.बी.सी. ऑफ जैनिज्म' के लेखक एवं पूर्व मुख्य अभियंता श्री एस.एल. जैन, भोपाल तथा देश के सुप्रिसद्ध वैज्ञानिक डॉ. अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद उपस्थित थे। इस प्रसंग पर पूज्य मुनिद्वय के सान्निध्य में सम्मानित मेधावी जैन विद्यार्थियों एवं अतिथियों की भव्य मंगल यात्रा तात्याटोपे प्रांगण से महावीर जिनालय, महल कॉलोनी तक निकाली गई। महावीर जिनालय में मुनि श्री क्षमासागर जी एवं मुनि श्री भव्यसागर जी के साथ छात्रों ने विश्व के कल्याण के लिए राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत प्रार्थना की।

सम्मानित होने वाले मेधावी विद्यार्थियों में से देशभर में सर्वोच्च तीन स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को विशिष्ट रूप से णमोकार मंत्र युक्त रजत पट्टिका से सम्मानित किया गया। इनमें नागपुर (महाराष्ट्र) के श्री योगेन्द्र कुमार जैन ने 93.7 प्रतिशत अंक पाकर प्रथम, चाँदखेड़ा गाँधीनगर (गुजरात) की कु. हेमल जैन ने 93.4 प्रतिशत अंक पाकर द्वितीय तथा कु. नवीसा जैन, सिकन्दराबाद ने 93.3 प्रतिशत अंक पाकर तृतीय स्थान प्राप्त करने का गौरव हासिल किया। प्रत्येक राज्य से प्राप्त होने वाली 224 प्रविष्टियों में आन्ध्रप्रदेश से 6, बिहार से 1, छत्तीसगढ़ से 12, देहली से 4, गुजरात से 21, हरियाणा से 3, कर्नाटक से 8, मध्यप्रदेश से 116, महाराष्ट्र से 11, पंजाब से 1, राजस्थान से 25, तमिलनाडु से 1, उत्तरप्रदेश से 14 एवं पश्चिम बंगाल से 1 प्रविष्टियाँ सम्मिलित हैं। इन सभी विद्यार्थियों को आमंत्रित करने के लिये मैत्री समूह द्वारा अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में पत्र प्रेषित किये गये थे। उनसे निर्धारित जानकारी एवं छायाचित्र संकलित किए गए। सभी छात्रों की संक्षिप्त जानकारी एवं चित्र परिपत्र में प्रकाशित किये गये। इस कार्यक्रम के लिये आधुनिक ढंग से मंच निर्मित किया गया। छात्रों के स्वागत, आवास, भोजन, सभागार में आसन, बैठकर एवं सम्मान के लिए उत्कृष्टतम स्तर की वैज्ञानिक ढंग से आकर्षक व्यवस्था की गई। मैत्री समूह एवं शिवपुरी जैन समाज द्वारा गठित स्वागत समितियों के सदस्य शुद्ध एवं धवल गणवेश में उनके सहयोग के लिए सदैव उपस्थित रहें।

इन सभी छात्रों में ऐसे अनेक छात्र हैं जिन्होंने छोटे-छोटे ग्रामीण स्थानों पर अध्ययन कर मेरिट में स्थान प्राप्त किया है। सम्मानित छात्रों में से 95 छात्र डॉक्टर और 105 छात्र इंजीनियर बन रहे हैं। शेष छात्र अन्य विषयों में अध्ययन कर रहे हैं। इन छात्रों को सम्मान स्वरूप स्वर्ण पदक, प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह, शाश्वत जीवन मूल्यों की स्थापना हेतु पुस्तकें एवं उच्च अध्ययन हेतु रुपये 2 लाख की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छात्रवृत्ति प्रदान की गई।

सम्मानकर्त्री डॉ. सुनीता जैन ने छात्रों को और आगे बढ़ने तथा और ऊँचा उठने के लिए अपने जीवन की जीवन्त घटनाओं के माध्यम से मार्मिक एवं प्रभावी ढंग से प्रेरित किया।

जैन युवा प्रतिभा सम्मान समारोह के निमित्त सम्पूर्ण राष्ट्र से एकत्रित छात्र-छात्राओं को संबोधित करते हुए पूज्य क्षमासागर जी ने अपनी मंगल भावना व्यक्त करते हुए बताया कि इन अत्यंत आत्मीय, सुखद और दुर्लभ क्षणों में यदि धर्म, दर्शन, अध्यात्म और विज्ञान की स्पष्ट छबि हमारे भीतर आकार ले सके और हम अपने जीवन को अच्छा बनाने के लिये सही निर्देश ले सकें तो यह इस समारोह की श्रेष्ठतम उपलब्धि होगी। दया, करुणा और प्रेम हमारा धर्म है। सत्य की साधना और जीवन का सम्मान हमारा दर्शन है। आत्म-संतोष, आत्म-निर्भरता और साम्य-भाव हमारी आध्यात्मिक चेतना का मधुर स्वर है। विवेक और सदाचरण से समन्वित ज्ञान ही हमारा विज्ञान है।

यह सच है कि आज वातावरण में अनेक विकृतियाँ और विषमताएँ हैं। इसके बावजूद भी हमारा कर्त्तव्य है कि हम अच्छा सोचें और अच्छा करें। भौतिकता की चकाचौंध में रहकर भी हम अपनी असलियत पहचानें। बढ़ती हुई भोगवादी विचार-धारा के बीच हम निस्वार्थ सेवा और त्याग की भावना बनाए रखें। संयुक्त परिवारों के विघटन और टूटते रिश्तों के बीच हम परस्पर आत्मीयता और संबंधों की मधुरता कायम रखें। खान-पान और रहन-सहन में निरन्तर बढ़ते आडम्बर के बीच सादगी और शालीनता को बढ़ावा दें।

गुरुजनों और आत्मीय जनों के प्रति निरंतर बढ़ते अनादर-भाव के बावजूद भी हम उनके प्रति अपनी श्रद्धा और विनय को बनाए रखें। निरंतर बढ़ती राजनैतिक बुराइयों और विदेशी मुद्रा के प्रति लोभ-लालच के कारण पनपने वाले हिंसक उद्योग-धंधों के बीच हम एक अच्छे अहिंसक नागरिक बनने का प्रयास करें। निरंतर बढ़ती हुई हिंसा, झूठ, चोरी, अश्लीलता और अंडा-मांस शराब सेवन जैसी बुरी आदतों का उन्मूलन कर हम स्वयं को नैतिक और चारित्रिक रूप से सुदृढ़ बनाएँ।

धार्मिक आयोजनों, धर्मस्थलों और धर्मगुरूओं में निरन्तर बढ़ते आडम्बर और दिखावे के बीच हम धर्म की तर्कसंगत, वैज्ञानिक और सही समझ विकसित करें और आत्मशांति पाने की विनम्र कोशिश करें। इस तरह अपनी गुणवत्ता के द्वारा अपने यौवन का शृंगार करें और आनेवाली पीढ़ी को श्रद्धा-प्रेम और सदाचरण का मानवीय-संदेश दें। हमें विश्वास है कि इस समारोह के प्रतिभाशाली सहभागी और इस विनम्र प्रस्तुति के पाठक मुनि श्री क्षमासागर जी की भावनाओं को साकार करेंगे और मैत्री का सुखद संदेश सबको देते रहेंगे।

पूज्य क्षमासागर जी ने इस अवसर पर युवा प्रतिभाशाली छात्रों के व्यक्तित्व में श्रेष्ठ आचार-विचार एवं गुरुजनों के प्रति श्रद्धा का छोटा सा पौधा रोपित किया है। उनमें परस्पर-आत्मीयता और निस्वार्थ-सेवा की भावना विकसित करने का पावन प्रयास किया है। उनमें अच्छा सोचने, अच्छा करने और सादगी से रहने की प्रवृत्ति विकसित करने की विनम्र कोशिश की है। मुझे विश्वास है कि मुनि श्री क्षमासागर जी के व्यक्तित्व रूपी प्रकाश स्तम्भ की किरणों से इन छात्रों का मंगलपथ सदैव आलोकित होता रहेगा और वे सरलता से विकास के उच्चतम सोपानों पर आगे बढ़ते रहेंगे।

अंत में बधाई देना चाहूँगी शिवपुरी जैन समाज को, जिसके अपरिमित, हार्दिक, आत्मीय स्नेह एवं सतत, उत्कृष्टतम सहयोग से यह प्रतिष्ठापूर्ण आयोजन भारी सफलता के साथ सम्पन्न हो सका और राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक स्वरूप ग्रहण कर सका।

30, निशातकालोनी,
भोपाल-462003 म.प्र.

आठ दिवसीय सर्वोदय शिक्षण शिविर सम्पन्न

शिवपुरी म.प्र.। परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद एवं मुनि श्री क्षमासागर जी, मुनि श्री भव्यसागर जी की प्रेरणा व सान्निध्य में 11 अक्टूबर को शिविर का उद्घाटन शिविर कुलपति श्रावक श्रेष्ठी श्री निरंजन लाल जी बैनाड़ा, आगरा एवं 'जिनभाषित' पत्रिका के संपादक पंडित श्री रतनचंद्र जी, भोपाल ने दीप प्रज्वलन कर महावीर जिनालय में किया। बालबोध पूर्वार्द्ध में 250, बालबोध उत्तरार्द्ध में 350, रत्नकरण्ड श्रावकाचार में 40, छहढाला में 60, द्रव्य संग्रह में 50 तथा तत्त्वार्थ सूत्र में 70 शिविरार्थियों ने भाग लिया। द्रव्य संग्रह एवं रत्नकरण्ड श्रावकाचार की कक्षाएँ कुलपति श्री बैनाड़ा जी ने, तत्त्वार्थ सूत्र एवं छहढाला ब्र. बहिन ऊषा देवी भरतपुर, बालबोध उत्तरार्द्ध ब्र. भैया संजीव जी कटंगी एवं मोती भैया कुम्हेर ने बालबोध पूर्वार्द्ध, ब्र. बहिन मैना दीदी शिवपुरी, ब्र. विजय भैया लखनादौन, ब्र. भैया जितेन्द्र शाजापुर एवं ब्र. भैया मौसम जी खुरई ने कक्षाएँ ली। 11 अक्टूबर से 17 अक्टूबर तक तीनों समय कक्षाएँ ली गईं जिसमें लगभग 800 विद्यार्थियों ने भाग लिया और 750 विद्यार्थियों ने परीक्षा दी। इसमें 90 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्तकर्ताओं को विशेष पुरस्कार, 60 प्रतिशत से अधिक प्राप्तकर्ताओं को पुरस्कार एवं 60 प्रतिशत से कम अंक पाने वालों को भी प्रमाण पत्र के साथ पुरस्कार जैन समाज एवं वर्षा योग समिति, शिवपुरी की ओर से दिया गया।

सर्वोदय शिक्षण शिविर के प्रारम्भ में 11 अक्टूबर से पंडित श्री रतनचंद्र जी, भोपाल के प्रवचनों का लाभ तीन दिन एवं अंतिम तीन दिन जैन गजट के प्रधान संपादक, महासभा के शीर्षस्थ विद्वान शास्त्री परिषद के अध्यक्ष, ओजस्वी वक्ता प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी, फिरोजाबाद के प्रवचनों का लाभ मिला। प्रतिदिन शिविरार्थियों के लिये मुनिद्वय क्षमासागर जी एवं भव्यसागर जी का उद्बोधन, आशीर्वाद दोनों समय मिलता रहा।

शिविर समापन पर सम्मान के समय ब्र. बहिन मैना दीदी, शिवपुरी ने कहा कि मेरी 12 वर्ष की तपस्या आज सफल हो गई, मेरे साथ की अधिकांश ब्र. बहिनें, भैया कहते हैं कि हमारे नगर में अमुक महाराज, माताजी का वर्षायोग चल रहा है तब मुझे लगता था कि हमारे यहाँ पता नहीं, कब किसका वर्षायोग होगा। आज बड़ी ही प्रसन्नता है कि परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के शिष्य मुनिश्री क्षमासागर जी का वर्षायोग हमारे नगर में हो रहा है। मैं यही भावना करती हूँ कि आप सभी लोग मुनिद्वय की वैयावृत्ति एवं श्रद्धा से सम्मान करे, यही मेरा सम्मान है। वर्षायोग समिति द्वारा शिविर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के समापन पर विद्वान अतिथि, ब्र. भैया, ब्र. बहिनों का वस्त्र एवं शास्त्र भेंट कर सम्मान किया गया।

सुरेश जैन मारौरा, शिवपुरी

'सुदर्शनोदय' क्षेत्र से पदयात्रा संघ

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र "सुदर्शनोदय" क्षेत्र आँवा (टोंक) से 21 सदस्यीय पदयात्रा संघ ने आँवा से औद्योगिक नगरी कोटा में विराजमान परमपूज्य मुनि पुंगव सुधासागर जी महाराज एवं संघ के दर्शनार्थ दिनांक 5.8.2001 को प्रातः 7 बजे प्रस्थान किया। क्षेत्र कमेटी के प्रचार मंत्री अशोक धानोत्या ने बताया कि पदयात्रा संघ गोठड़ा, धोवड़ा, आलोद, बूँन्दी, तालेडा होते हुए श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र केशवराय पाटन होते हुए दिनांक 8.8.2001 को सायं 7 बजे औद्योगिक नगरी कोटा में नयापुरा स्थित श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर पहुँचा। वहाँ पर स्थानीय कमेटी ने सभी पदयात्रियों का माल्यार्पण कर स्वागत किया। दिनांक 9.8.2001 को पदयात्रा संघ नयापुरा कोटा से 6 किलोमीटर चलकर प्रातः 7 बजे सी.ए.डी. चौराहा दादाबाड़ी कोटा पहुँचा, वहाँ पर चातुर्मास कमेटी के सदस्यों ने सभी पदयात्रियों का माल्यार्पण कर स्वागत किया और बैण्डबाजों के साथ जय-जयकार बोलते हुए पदयात्रा संघ ने परमपूज्य मुनिपुंगव सुधासागरजी महाराज एवं संघ के दर्शन किये। सभी पदयात्रियों को महाराजश्री ने आशिर्वाद दिया तथा चातुर्मास कमेटी द्वारा सभी पदयात्रियों को एक-एक चित्र मुनिश्री का एवं एक-एक पुस्तक "नग्नता क्यों और कैसे" भेंट की।

अशोक जैन

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का जन्म दिवस एवं स्वर्ण संयमदिवस सानन्द सम्पन्न

जैन समाज की साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का 68वाँ जन्म दिवस एवं 50वाँ (स्वर्ण) संयमदिवस हर्षोल्लास पूर्वक शरदपूर्णिमा - 1 नवम्बर को जैन हैप्पी स्कूल, निकट शिवाजी स्टेडियम, कनॉट प्लेस, दिल्ली में भारी जनसमूह के बीच सम्पन्न हुआ। ज्ञातव्य है कि सन् 1934 में पूज्य माताजी का जन्म टिकैत नगर (बाराबंकी) में श्रेष्ठी छोटेलालजी की धर्मपत्नी मोहिनी जी की पवित्र कुक्षी से शरदपूर्णिमा को हुआ था एवं 18 वर्ष की अल्प आयु में पूज्य माताजी ने शरदपूर्णिमा के दिन ही आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत एवं गृहत्याग का नियम लेकर व्रतिक जीवन का प्रारंभ किया था।

इस अवसर पर पूज्य माताजी ने कहा कि लोक प्रभावना के लिए नहीं, वरन् आत्मा में जो असीम आनन्द भरा हुआ है उसे प्राप्त करने के लिये ही दीक्षा ली जाती है, अतः आप सबको भी आज कोई ना कोई संयम अवश्य ग्रहण करना चाहिए। पूज्य माताजी ने महिलाओं को बालिकाभ्रूण की हत्या न करने का संकल्प लेने की प्रेरणा भी प्रदान की। प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने इस अवसर पर पूज्य माताजी के प्रति अपनी विनयांजलि में कहा कि पूज्य माताजी के व्यक्तित्व की महानता उनकी कथनी एवं करनी की एकरूपता में निहित है एवं उनको गुरु के रूप में प्राप्त करना सर्वाधिक बड़ा पुण्य है। क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी ने पूज्य माताजी के वैराग्य एवं धर्म दृढ़ता का सभी को परिचय प्रदान किया। विविध वक्ताओं ने पूज्य माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन करते हुए उनको आज के युग की इतिहास निर्मात्री एवं बहुमूल्य वरदान बताया।

सभाध्यक्ष के रूप में साहू श्री रमेशचन्दजी जैन एवं विशिष्ट अतिथियों के रूप में श्री राजकुमार जैन (अध्यक्ष-श्वेताम्बर जैन मूर्ति पूजक समाज), डॉ. एम.पी. जैन, श्री सलेकचन्द जैन कागजी, श्री पुनीत जैन (न.भा.टा.), श्री स्वराज जैन इत्यादि महानुभाव उपस्थित थे। कर्मयोगी ब्र. श्री रवीन्द्र कुमार जैन ने सभा का सफल संचालन किया।

ब्र. कु. स्वाति जैन (संघस्थ)

डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' अखिल भारतीय सर्वश्रेष्ठ साहित्य पुरस्कार से सम्मानित

दमोह। 4 नवम्बर 2001 को दिल्ली के चिन्मयानन्द आडीटोरियम में अन्तरराष्ट्रीय संस्था "अहिंसा इंटरनेशनल" द्वारा वर्ष 2000-2001 के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार पुरस्कार से दमोह के प्रख्यात मनीषी डॉ. भागचन्द्र जैन "भागेन्दु" को एक भव्य समारोह में सम्मानित किया गया।

उन्हें इस पुरस्कार स्वरूप रुपये 31,000/- की राशि, शाल, श्रीफल, अंगवस्त्र, प्रतीकचिह्न एवं प्रशस्ति से सम्मानित किया गया है। समारोह के मुख्य अतिथि दिल्ली उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश श्री आर.सी. जैन ने समारोह को सम्बोधित किया।

वीरेन्द्र कुमार इटोरिया
अध्यक्ष, जैन पंचायत, दमोह

पं. शिवचरणलाल जी जैन मैनपुरी गणिनी आर्यिका ज्ञानमती पुरस्कार से सम्मानित

नई दिल्ली। दिनांक 25.10.2001 की ऐतिहासिक अविस्मरणीय बैठक में तथा पू. 105 गणिनी प्रमुख आर्यिका रत्न ज्ञानमति माताजी के पावन ससंघ सान्निध्य में समारोहपूर्वक वर्ष 2000 का "आर्यिका रत्न ज्ञानमती माताजी पुरस्कार" देश के मूर्धन्य विद्वान सरस्वतीपुत्र पं. शिवचरणलालजी जैन मैनपुरी, यशस्वी अध्यक्ष विद्वत् महासंघ को प्रदान किया गया। इस पुरस्कार में एक लाख रुपये की नगद राशि, शाल, श्रीफल, प्रशस्तिपत्र प्रदान किया गया। पं. शिवचरणलालजी जैनागम की आर्य परंपरा के सफलतम प्रवचनकार तथा माँ जिनवाणी एवं देवशास्त्र गुरु के परमभक्त हैं।

आप "अखिल भारत वर्षीय शास्त्रिपरिषद" के वरिष्ठ कोषाध्यक्ष तथा तीर्थंकर ऋषभदेव विद्वत महासंघ के यशस्वी अध्यक्ष हैं। इसके पूर्व आप फिरोजाबाद में "श्रुतसंवर्धन पुरस्कार" से भी सम्मानित हो चुके हैं।

पं. खेमचंद्र जैन शास्त्री
रायल हास्पिटल गढ़ारोड
जबलपुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्ट दिवसीय विधान एवं पूजन शिविर सानंद संपन्न

नरसिंहपुर (कंदेली)। भगवान श्री महावीर स्वामीजी की 2600वीं जन्म जयंती जो कि अहिंसा वर्ष के रूप में संपूर्ण विश्व में मनायी जा रही है उसके तारतम्य में विगत दिवस पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, कंदेली में परमपूज्य 108 संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागर महाराज के परम शिष्य 105 पूज्य एलक दयासागर जी महाराज के मंगल चातुर्मास के अंतर्गत धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजनों की शृंखला में दिनांक 5 अक्टूबर से 12 अक्टूबर तक 8 दिवसीय पूजन शिविर का आयोजन सानंद संपन्न हुआ।

डॉ. सुधीर सिंघई
कंदेली, नरसिंहपुर, म.प्र.

श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर-विद्वद्वर्ग द्वारा दशलक्षण पर्व पर प्रवचन प्रभावना

सांगानेर (जयपुर)। प्रातः स्मरणीय पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी के शुभाशीर्वाद एवं पूज्य मुनिवर श्री सुधासागरजी की मंगल प्रेरणा से गत 5 वर्ष पूर्व आरंभ हुये श्री दि. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान- (आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास) सांगानेर (जयपुर) राज. के विद्वद्वर्ग द्वारा दशलक्षण पर्व 2001 के पावन प्रसंग पर निःस्पृह भाव से प्रवचन-विधानादि विधाओं के द्वारा सम्यक्ज्ञान का प्रचार प्रसार करते हुए अनुपम धर्म प्रभावना की गयी।

संस्थान के सम्यक्ज्ञान के प्रचार प्रसार में सम्यक् समर्पण को देखते हुए भारत वर्षीय दि. जैन समाज के 15 प्रान्तों से लगभग 200 निमंत्रण इस सत्र में प्राप्त हुए थे लेकिन 150 विद्वान ही संस्थान द्वारा उपलब्ध कराये जा सके हैं। आगे और भी अधिक विद्वान उपलब्ध कराने का प्रयास जारी है। इस पुनीत प्रसंग में भारतवर्षीय विभिन्न स्थानों की दि. जैन समाज द्वारा विद्वानों की निःस्पृह भावना को दृष्टिगत करते हुये अधिकाधिक सहयोग राशि संस्थान को प्रदान की है। एतदर्थ समाज के आभारी हैं।

प्रद्युम्न कुमार जैन 'शास्त्री'

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षण शिविर का समापन सम्पन्न

मेरठ (उ.प्र.)। 25.10.2001 पू. उपा. 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज ससंघ के सान्निध्य में महावीर जयन्ति भवन के विशाल प्रांगण में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षण शिविर के समापन का शुभारम्भ मंगलाचरण से हुआ। शिविर के संचालक पं. प्रद्युम्न कुमार शास्त्री ने 18 अक्टूबर से 25 अक्टूबर 2001 तक लगाये गये शिविर की उपलब्धि पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जो बच्चे कभी मंदिर नहीं जाते थे वे आज मंदिर में प्रवचन में दिख रहे हैं। यह सब सन्तों तथा शिविरों का ही प्रभाव है। शिविरों के माध्यम से जीवन में संस्कारों का बीजारोपण होता है अतः आज के भौतिकवादी युग में इनकी उपादेयता और भी अधिक बढ़ गयी है।

शिविर के एवं श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर के निदेशक डॉ. शीतलचंद जैन प्राचार्य ने अपने विचार रखते हुए कहा कि आपने जो शिविर में सीखा, उसे जीवन में आचरित करना चाहिये। जो भी संस्कार आप सभी में डाले है उन संस्कारों को धूमिल नहीं करना। मेरठ समाज से हम सभी यही अपेक्षा रखते है कि आगे भी आप इसी प्रकार के धार्मिक शिविरों का आयोजन कराते रहे ताकि आपके बच्चे सुसंस्कारित होकर कर्तव्यों का पालन कर सके।

इस अवसर पर ब्र. संजीव भैया कटंगी, भारतीय जैन मिलन के राष्ट्रीय महामंत्री सुरेश जैन ऋतुराज ने भी अपने विचार रखे। तत्पश्चात विद्वानों का परम्परागत तरीके से श्रीफल एवं वस्त्रादि से सम्मान किया गया। शिविर में 1050 शिविरार्थियों ने 25 कक्षाओं में भाग लिया। सभी कक्षाओं में प्रथम एवं द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले शिविरार्थियों को विशेष पुरस्कार तथा प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया।

समारोह के अन्त में उपा. श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने अपनी पीयूषवाणी द्वारा कहा कि ज्ञान यज्ञ का यह कार्य निश्चित ही आप सभी के अंतस् में छाये अंधकार को दूर करने में माध्यम बनेगा तथा बना होगा। आज शिविरों की महती आवश्यकता है क्योंकि जब तक आपके बच्चे संस्कारित नहीं होंगे, तब तक आपके जीवन में अशान्ति रहेगी। चूँकि आज आप सभी की शिकायत रहती है कि मेरे बच्चे मेरी बात नहीं मानते, बुराइयों की ओर कदम बढ़ा रहे है, क्या करें, रात दिन आप सभी चिंतित रहते हैं आगे कैसे क्या होगा? अगर इन सभी समस्याओं से आप समाधान पाना चाहते हैं तो आज धार्मिक संस्कारों के बीजारोपण की महती आवश्यकता है।

चातुर्मास समिति के चेयरमेन श्री प्रेमचंद जी जैन ने अंत में शिविरार्थियों, शिक्षकों तथा प्रत्यक्ष-परोक्ष में शिविर की सफलता में योगदान करने वालों का धन्यवाद ज्ञापित किया।

प्रद्युम्न कुमार जैन शास्त्री
व्याख्याता

भोपाल में शिक्षण शिविर सम्पन्न

आचार्य श्री विद्यासागर जी की परम विदुषी शिष्या आर्यिकारत्न पूर्णमती जी और उनके संघ के सान्निध्य में श्री दि. जैन मंदिर टिन शेड, टी.टी. नगर में दिनांक 21.10.2001 से 28.10.2001 तक जैनधर्म शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। इसके कुलपति पं. रतन लाल जी बैनाड़ा थे। लगभग 500 शिक्षार्थियों ने बालबोध पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध, छहढाला, रत्नकरण्डश्रावकाचार और पूजनविधि की शिक्षा प्राप्त की। शिक्षण कार्य दि. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर (जयपुर) के ब्रह्मचारी बन्धुओं ने किया। पं. रतनलाल जी बैनाड़ा रत्नकरण्डश्रावकाचार की कक्षा लेते थे। उनकी समझाने की शैली विनम्र और मधुर थी जो श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किये रहती थी। रात्रि में बैनाड़ा जी द्वारा शंका समाधान का ज्ञानवर्द्धक कार्यक्रम होता था। आर्यिकारत्न श्री पूर्णमती जी 'समयसार' के पुण्यपापाधिकार पर प्रवचन करती थीं, जिससे श्रावकों ने पुण्यपाप की समानता और भिन्नता के अनेकान्तात्मक स्वरूप को युक्तिसंगत ढंग से हृदयंगम किया। इस प्रकार शिविर अत्यंत लाभप्रद रहा।

श्रीपाल जैन 'दिवा'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानस दर्पण में

आचार्य श्री विद्यासागर

मिट्टी की दीपमालिका
जलाते बालक बालिका
आलोक के लिये
ज्ञात से अज्ञात के लिये
किन्तु अज्ञात का/अनुभूति का/अदृष्ट का
नहीं हुआ संवेदन/अवलोकन

वे सजल लोचन
करते केवल जल विमोचन
उपासना के मिष से
वासना का, रागरंगिनी का
उत्कर्षण हा! दिग्दर्शन
नहीं नहीं कभी नहीं
महावीर से साक्षात्कार

वे सुंदरतम दर्शन
उषा वेला में
गात्र पर पवित्र
चित्र विचित्र
पहन कर वस्त्र
सह कलत्र पुत्र
युगवीर चरणों में

सबने किया मोदक समर्पण
किन्तु खेद है,
अच्छा स्वच्छ औ' अतुच्छ
कहाँ बनाया मानस दर्पण?

तमो, रजो, गुण तजो
सतो गुण से जिन भजो
तभी मँजो/तभी मँजो
जलाओ हृदय में जन जन दीप
ज्ञानमयी करुणामयी
आलोकित हो/दृष्टिगत हो/ज्ञात हो
ओ सत्ता जो समीप

'नर्मदा का नरम कंकर' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय के उत्पादन

1. **प्राकृतिक चाय** : प्रचलित चाय के बदले गुणकारी तथा वात, पित्त, कफ, सर्दी, खाँसी, जुकाम, श्वांस, सिरदर्द, मानसिक व शारीरिक कमजोरी एवं पाचन में लाभदायक है। स्वादिष्ट व निरापद है।
   मिश्रण : ब्राह्मी शंखपुष्पी, अर्जुन छाल, डौढा, काली मिर्च, सौंठ, सौंफ, लालचंदन आदि।
   वजन : 100 ग्राम, मूल्य : 20 रुपये।
2. **त्रिफला चूर्ण** : पाचन, गैस, कब्ज में गुणकारी चूर्ण है। स्वास्थ्य संतुलन रखता है। आँखों व बालों के लिये लाभदायक हैं।
   मिश्रण : हर्र, बहेरा, आँवला।
   वजन : 100 ग्राम, मूल्य : 12 रुपये।
3. **रक्त शुद्धि काढ़ा** : इसका काढ़ा पीने से लीवर, तिल्ली व पाचन में सुधार होता है। रक्त के सभी प्रकार के विकार व चर्म रोग शोषित होते हैं। पीलिया, मौसमी बुखार से बचाव होता है।
   मिश्रण : चिरायता पत्ती।
   वजन : 100 ग्राम, मूल्य : 20 रुपये।
4. **मधुमेहारी चूर्ण** : मधुमेह के रोगियों की रक्त शर्करा को नियंत्रित करने में तथा लीवर, पेनक्रियाज को सुधार कर शर्करा सामान्य करने में बहुत गुणकारी योग्य, अचूक व लाभप्रद है।
   मिश्रण : अंकुरित मैथी, गिलोय, कुटकी, चिरायता पत्ती, नीम पत्ती।
   वजन : 100 ग्राम, मूल्य : 20 रुपये।
5. **पाचक चूर्ण** : गैस, कब्ज, अजीर्ण अफरा के लिए लाभप्रद है। स्वादिष्ट तथा गुणकारी है।
   मिश्रण : अजवाइन, कालानमक, अजमोठ, शाहीजीरा, हर्र, बेहरा, आँवला।
   वजन : 100 ग्राम, मूल्य : 20 रुपये।
6. **मंजन** : शुद्ध मिश्रण के योग से तैयार किया गया है। दाँत दर्द, पायरिया, मसूढ़े, मुख तथा जीभ के रोगों में लाभदायक हैं।
   मिश्रण : सोप स्टोन, लौंग, कपूर, पिपरमेंट, माजूफल, फिटकरी।
   वजन : 100 ग्राम, मूल्य : 18 रुपये।
7. **बेल पाउडर** : पेट व पाचन संबंधी रोगों में गुणकारी हैं। आँव, दस्त पेचिश में लाभकारी है।
   मिश्रण : बेल का चूर्ण, मूल्य : 15 रुपये।
8. **दर्दनाशक तेल** : धूप में बैठकर इसकी मालिश करने से गठिया, जोड़ों का दर्द, साइटिका, लकवा व सूजन में आराम मिलता हैं। मालिश के बाद हल्का सेंक क़र सकते हैं।
   मिश्रण : प्रसारणी, कुचला, दशमूल, मजीठ, हल्दी, अदरक तथा अनेक दर्दनाशक जड़ी- बूटियों से मिश्रित।
   वजन : 50 मिलीग्राम, मूल्य : 30 रुपये।
9. **केश निखार** : बालों की रूसी को हटाता है। बाल काले, लम्बे व स्वस्थ रहते हैं।
   मिश्रण : आँवला, रीठा, कृष्ण भृंगराज, शिकाकाई, नागरमोथा, मजीठ आदि,
   वजन : 100 ग्राम, मूल्य : 18 रुपये
10. **मुलतानी मिट्टी साबुन** : मुल्तानी मिट्टी विशेष मिश्रण से बनाया गया नहाने का हर्बल साबुन, यह चर्मरोगों में लाभदायक है तथा त्वचा को मुलायम, साफ व चिकना रखता है। मूल्य : 8 रुपये।
11. **हर्बल फेश पैक** : कील, मुहाँसे, नीम पैक, रंगनिखार पैक, चंदन पैक, आरेंजपैक, लेमन पैक, रोज पैक आदि मुहाँसे, कील, दाग व चेहरा साफ कर रंग निखारते हैं। मूल्य : 10 रुपये।
12. **हिना** : इसके बालों में लगाने से बाल काले, सुन्दर घने होते हैं। बालों की रुसी तथा झड़ना कम होता है।
   मिश्रण : मेंहदी, आंवला, रीठा कृष्ण भृंगराज, शीकाकाई, नागरमोथा, मजीठ आदि।
   वजन : 100 ग्राम, मूल्य : 15 रुपये।
13. **मैथीचूर्ण** : इसके खाने से डायबिटीज कन्ट्रोल होता है।
   मिश्रण : अंकुरित मैथी, काला नमक, मूल्य : 12 रुपये।
14. **चर्मरोग की दवा** : दाद, खाज, खुजली, अपरस तथा किसी भी प्रकार के चर्मरोग के लिये लाभदायक हैं।
   मिश्रण : फिटकरी, सुहागा आदि। मूल्य : 15 रुपये।

भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय में सभी प्रकार की चिकित्सा सुविधा के साथ व्यक्तिगत उपयोग हेतु कटि स्नान, रीढ़ स्नान टब, एनिमा पॉट सेट, रबर की थैलियाँ (गर्म, बर्फ) रबर नेति व कैथेटर, नेतिलोटा, आई वाश कप, भाप लेने का यंत्र, मिट्टी पट्टी के साँचे, सभी प्रकार की सूती, ऊनी लपेट, एक्युप्रेशर के उपकरण, पुस्तकें, चार्ट आदि विक्रय के लिए उपलब्ध हैं। स्वास्थ्य लाभ हेतु अवश्य पधारें।

खुरई रोड करीला, सागर-470 002 (म.प्र.) फोन (07582) 46271, 46671

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय सस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org